प्रकाशक—
शंकरदान शुभैराज नाहटा
४ जगमोहन मल्लिक लेन
कलकत्ता ।

न्यू राजस्थान प्रेस
७३ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट
कलकत्ता ।

जिनके अनन्त उपकारों से हम कभी
भी उऋण नहीं हो सकते
उन्हीं पूज्यपाद स्वर्गीय
श्री शंकरदानजी नाहटा,
की
स्मृति में सादर
श्रद्धाञ्जलि
समर्पित
है।

अगरचन्द नाहटा
भँवरलाल नाहटा।

अनुक्रमणिका

— * —

प्राक्कथन

परमपूज्य योगीन्द्र युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरिजी बड़े दादा साहब के नाम से जैन जगत् में सुप्रसिद्ध हैं। आप असाधारण प्रतिभासम्पन्न जैन शासन प्रभावक क्रान्तिकारी जैनाचार्य थे। आपकी वाणी में जादू एवं कार्यों में चमत्कार ओतप्रोत था। जिस समय जैन शासन में चैत्यवास का बोलबाला था साधु समाज सुविहित विधिमार्ग से च्युत होकर शिथिलाचार के प्रवाह में प्रवाहित हुआ जा रहा था राज्याश्रय प्राप्त कर उनकी और भी बन आई और सुविहित त्यागी साधुओं का नगर प्रवेश तक असम्भव हो गया था। उनके अनुयायी श्रावक आभ्यन्तरिक शुद्धि के राजमार्ग से हट कर बहिर्मुखी हो रहे थे। उस समय युग की पुकार एक महापुरुष के अवतार के लिये प्रतिध्वनित हो रही थी। श्री जिनेश्वरसूरिजी जैसे तेजोमय नक्षत्र ने इसी समय अपनी विद्वता एवं त्यागरश्मि से पाटण के नरपति दुर्लभराज की सभा में सुविहित मार्ग का प्रकाश फैलाया। चैत्यवासियों की प्रबल पराजय हुई और उनके संगठन में खलबली मच गई। श्री जिनवल्लभसूरिजी ने नवांगी वृत्तिकार श्री अभयदेवसूरिजी के सदुपदेशों से प्रभावित हो कर चैत्यवास का परित्याग कर उसके उन्मूलन में सारी शक्ति लगा दी। ठेठ लगभग

तैयार हो चुका था अब उसके लिए केवल बाल मिचन और बीज मर की जरूरत रह गयी थी इस भीआरोपेय का श्रेय हमारे चरित्रनायक श्री जिनदत्तसूरिजी को प्राप्त हुआ।

प्रत्येक सत्कार्य में विघ्न बाधाएं उपस्थित होती रहती हैं और निर्मल धारा में विकार आता रहता है जिसका परिष्कार करना आवश्यक हो जाता है। उसके बिना वह शुद्ध बहते बहते सारे स्वच्छ जलको अपेय बना देती है। इसी प्रकार धार्मिक विचार धाराओं एवं आचरणाओं में मनुष्यके चिर अभ्यस्त प्रमत्त तत्परोंके कारण विकृति आ जाती है। पर साधारणतया मनुष्य अनुकरण प्रिय और रूढि प्रवाह का अनुसरण करने वाला होता है। अतः उस विकार के सुधार एवं विरोध की शक्ति कचित् असाधारण व्यक्ति में ही पायी जाती है। वर्षाकाल के नदी प्रवाह में बह जाना सहज है पर उसका सामना कर आगे बढ़ते जाना अवश्य ही असाधारण कार्य्य है। श्री जिनदत्तसूरिजी के समय चैत्यवास का प्रवाह बड़े जोरों से बह रहा था। अनेक विद्वान् उसे ठीक न समझते पर भी परम्परागत प्रवाह में प्रवाहित हो रहे थे पर सूरिजी ने अपने असीम आत्मबल का परिचय देकर तत्कालीन परिस्थिति पर विजय प्राप्त की। आपके सदुपदेशों से प्रभावित होकर अनेकों चैत्यवासी आचार्यों ने चैत्यवास का परित्याग कर आपकी शरण ली। आपने

युग के वातावरण को बदल डाला अतः आपका युगप्रधान पद सर्वथा सार्थक है।

इसी युगमें कलिकाल सर्वज्ञ गुर्जरेश्वर कुमारपाल प्रतिबोधक महान् साहित्यधर श्री हेमचन्द्राचार्य (जन्म सं. ११४५) दिगम्बर वादी कुमुदचन्द्र को शास्त्रार्थ में परास्त करने वाले वादिदेवसूरि (जन्म सं. ११४३) समर्थ टीकाकार श्रीमलयगिरि कवि चक्रवर्ती श्रीपाल आदि अनेक विद्वान जैन शासन की शोभा बढ़ा रहे थे। यह समय जैनों के लिए स्वर्ण-युग था।

हमारा पूर्व संकल्प—

खरतर गच्छ के प्रसिद्ध दादा संज्ञक चार महान् जैनाचार्यों का जीवनचरित्र प्रकाशित करने का हमारा चिर मनोरथ था। पश्चात् पूर्वी क्रमानुसार सम्राट अकबर प्रतिबोधक युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि दादा श्री जिनकुशलसूरि और मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि क्रमशः प्रकाशित हो चुके हैं*। अब यह चौथा ग्रन्थ प्रकाशित करते हुए अपने पूर्व संकल्प की सिद्धि का हमें अपार हर्ष है।

---

* इन चरित्रों के आधार से उपाध्याय श्री लब्धिमुनिजी महाराज ने संस्कृत में श्लोकबद्ध चरित्रत्रय निर्माण करके हमारे लिखित ग्रन्थों की प्रामाणिकता स्वीकार कर हमारा उत्साह बढ़ाया है।

प्रस्तुत ग्रंथ की जन्म कथा—

जैसा कि दादा श्रीजिनकुशलसूरि और मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि ग्रन्थ के किञ्चित् वक्तव्य में लिखा गया है—प्रस्तुत चरित्र का लेखन युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरि ग्रन्थ के पश्चात् ही हो चुका था। इसका निमित्त कारण श्री जिनदत्तसूरि चरित्र निर्मापक समिति फलौदी के द्वारा प्रकाशित एक विज्ञप्ति थी जिसमें सं० १९९४ के पूर्व सूरिजी का जीवनचरित्र लिख भेजने का निवेदन था। उक्त विज्ञप्ति के अनुसार 'गणधर सार्द्ध शतक बृहद्वृत्ति' के आधार से ऐतिहासिक खण्ड लिखा जा चुका था पर पट्टावलियों में उल्लिखित सूरिजी के चमत्कारों के ऐतिहासिक तथ्योंका निर्णय करने की समस्या के लिए यह इतने दीर्घकाल तक रुका पड़ा रहा। इसी बीचमें हमने प्राप्त समस्त सामग्री का मनन कर डाला और जेसलमेर की साहित्यिक यात्रा भी इसी मुख्य उद्देश्य से की गई क्योंकि हमें जेसलमेर के ज्ञानभण्डार में बहुत कुछ नवीन साधन प्राप्त होने की विशेष संभावना थी। परन्तु वहां जाने के बाद ऐसा कोई भी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक साधन प्राप्त न हुआ जो हमारे अभिलषित विषय पर प्रकाश डाल सके। अन्ततः चमत्कारिक प्रवादों की उलझन को किसी भी तरह सुलझाकर जीवनचरित्र प्रकाशित कर डालनेका निश्चय किया और यह चित्र रूपसे प्रकट हुआ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

घटना क्रम पर विचार—

सूरिजी के जीवन चरित्र की सब से प्रामाणिक सामग्री गणधर सार्द्धशतक बृहद्वृत्ति* में पायी जाती है जो सूरिजी के स्वर्गवास के ८४ वर्ष बाद ही पं. सुमतिगणि ने पूज्यदेव गणि आदि वृद्ध सम्प्रदाय से ज्ञात कर बनाई थी। हमने उसी क्रमसे सूरिजी के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का संकलन किया है पर उपर्युक्त वृत्ति में घटना क्रम ऐतिहासिक दृष्टिकोण से समयानुक्रम लिखा नहीं ज्ञात होता। पं. सुमतिगणि का उद्देश्य गुरुदेव के जीवनवृत्त की प्रमुख घटनाओं का एकत्र मात्र कर देने का मालूम होता है क्योंकि कालक्रम की दृष्टि से कई घटनाएं जो पीछे लिखी हैं वे पहले घटित हुई ज्ञात होती हैं। और कई पहिले लिखी घटनाएं पीछे हुई होंगी इसका आभास कई अन्य विश्वस्त सूत्रों से पाया जाने पर भी साधनाभाव से हम उनका कालक्रम से वर्गीकरण नहीं कर सके। ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने वाले पाठकों के समक्ष यह स्पष्टीकरण कर देना हमें आवश्यक प्रतीत हुआ है।

सूरिजी के रचित ग्रन्थ—

हमारा विचार था कि सूरिजी के समस्त ग्रन्थ हिन्दी अनुवाद

---

* वर्द्धमानसूरिजी से लेकर श्री जिनदत्तसूरिजी तक के चरित्रों को इसी वृत्तिसे जिनपालोपाध्यायने अपनी गुर्वावली में समुद्धृत किया है।

के साथ इसी ग्रन्थ में प्रकाशित किये जाय। इसी उद्देश्य से हमने अप्रकाशित समस्त ग्रन्थों की प्रतिलिपि भी जेसलमेर भंडार आदि से प्राप्त कर ली थी और उनका अनुवाद कार्य भी कविवर श्रीकवीन्द्रसागर जी द्वारा प्रारम्भ हो गया था और चैत्यवन्दन कुलक, उपदेश कुलक, चर्चरी, काल-स्वरूप कुलक, उपदेश रसायन इन पांच ग्रन्थों का संस्कृत छाया व हिन्दी अनुवाद हमें प्राप्त हो गया है। संदेहदोलावली का भी कुछ अनुवाद आपने किया है पर यह कार्य वहीं रुक जाने से हमें जहां तक समस्त ग्रन्थों का अनुवाद न हो जाय अपने मनोरथ को स्थगित रखना पड़ा है। फिर भी अप्रकाशित ग्रन्थों को तो प्रकाशित कर ही देना चाहिए इस दृष्टि से परिशिष्ट नं० २ में आपकी प्राप्त अप्रकाशित मूल कृतियाँ दे दी गई हैं। भविष्य में सब ग्रन्थों के अनुवाद हो जाने पर उन सब का संग्रह ग्रन्थ प्रकाशित करने का प्रयत्न किया जायगा। जिससे सूरिजी की अक्षरदेह-कृतियां विचारधारा उपदेश तत्कालीन वातावरण आदि अनेक बातों का ज्ञान सर्वसाधारण के लिए सुलभ हो जायगा।

सूरिजी की मन्त्र पुस्तिका—

मन्त्र विज्ञान में सूरिजी की असाधारण गति थी। उनकी अखण्ड साधना के फलस्वरूप आपके मुख से निकला हुआ प्रत्येक शब्द मन्त्र-सम चमत्कारी होता था। सूरिजी के लिखित एक ताड़पत्रीय मन्त्र पुस्तक कुछ वर्ष पूर्व उपाध्याय श्री सुखसागरजी महाराज के कथनानुसार

पालीताना में विक्रयार्थ आई थी पर वह ४ ५०) में भी विक्रेता ने उन्हें न देकर अधिक मूल्य में अन्यत्र बेच दी। कतिपय प्राप्त फरकर पत्रोंमें कई मत्र आदि जिनदत्तसूरिजी की आम्नाय व नामो ल्लेखसहित पाये जाते हैं। इनसे भी ऐसी कोई पुस्तक होने की पुष्टि होती है अत जिस किसी सज्जन को आपश्री की उपयुक्त प्रति व अन्य कोई भी आपकी नवीन रचना प्राप्त हो तो हमें सूचित करने का सादर अनुरोध है।

सूरिजी के चित्र—

जेसलमेर दुर्गस्थ श्री जिनभद्रसूरि ज्ञानभण्डार की कई ताड़पत्रीय प्रतियों के काष्ठ-फलक पर सूरिजी के चित्र प्राप्त हुए हैं जिनमें से एक आपश्रा चित्रमयी युगप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरि ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह' और जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास' में पूर्व प्रका शित हो चुके हैं और २ अन्य चित्र भारतीय विद्या' भाग ३ में मुनि जिनविजयजी ने प्रकाशित किये हैं। इन तीनों चित्रोंका इस ग्रन्थ में दिया जा रहा है। आपश्री का चौथा चित्र त्रिभुवनगिरि के महाराजा कुमारपाल के साथ होने का उल्लेख जेसलमेर भाडा गारीय ग्रन्थानां सूची * में पाया जाता है पर हम जब जेसलमेर गये

---

* नरपति श्री कुमारपाल भक्तिरस्तु। पण्डित जगचन्द्र सहचराल अर्थंम युगप्रवरागम (जेसलमेर ज्ञान भंडार सूची बड़ौदा पृ ११ प्रति न २९१ धर्मप्रकीर्ण मूल)

थे बहुत तलाश करने पर भी वह पट्टिका नहीं मिल सकी थी यद्यपि पीछे से वह प्राप्त भी हो गई है पर इसके लिए कई पत्र देने पर भी अद्यावधि हमें उसका फोटो प्राप्त नहीं हो सका हमारी बहुत इच्छा थी कि उसे भी हम इस ग्रन्थ में प्रकाशित कर द पर ऐसा न कर सकने का हमें पूर्ण खेद है।

सूरिजी की चादर–

जेसलमेर के बड़े उपाश्रय में सूरिजी की चादर विद्यमान है जिसकी बड़े भक्ति-भाव से पूजा व सुरक्षा होने का पूर्ण प्रबन्ध है।

विशेष ज्ञातव्य–

१ सूरिजी के शिष्य *शिष्यनी नामोल्लेख* इस पुस्तक के पृ १५ १६ में आया है उनके अतिरिक्त शान्तिमती गणिनी का उल्लेख जेसलमेर भंडार की ताडपत्रीय प्रति से नकल की हुई प्रकरण सवद पत्र ५१ (नं न ९१) वाली नई प्रति में आता है। यथा:—

स ११६५ माघ सुदि ६ बुधे श्री जिनदत्तसूरि शिष्यण्या शान्तिमती गणिन्या संशय पुस्तिका' ।

इसकी मूल प्रति उपयु क्त भण्डार में हमारे देखने में नहीं आई अतः उसका अन्वेषण आवश्यक है।

थे बहुत तलाश करने पर भी वह पट्टिका नहीं मिल सकी थी यद्यपि पीछे से वह प्राप्त भी हो गई है पर इसके लिए कई पत्र देने पर भी अद्यावधि हमें उसका फोटो प्राप्त नहीं हो सका हमारी बहुत इच्छा थी कि उसे भी हम इस ग्रन्थ में प्रकाशित कर दें पर ऐसा न कर सकने का हमें पूर्ण खेद है।

सूरिजी की चादर–

जेसलमेर के बड़े उपाश्रय में सूरिजी की चादर विद्यमान है जिसकी बड़े भक्ति-भाव से पूजा व सुरक्षा होने का पूर्ण प्रबन्ध है।

विशेष ज्ञातव्य–

१ सूरिजी के जिन शिष्यों का नामोल्लेख इस पुस्तक के पृ० ... में आया है उनके अतिरिक्त धामिमती साध्वी का प्र० ... पर परिचय होती है परन्तु ... से ... तक की हुई प्रशंसा ... त्याग का गु... है।

... है।

सूरिजी सम्बन्धी स्तुति स्तोत्र–

जैन समाज में सूरिजी की जितनी प्रतिष्ठा भक्ति बहुमान है उतना अन्य किसी भी आचार्य का नहीं है। आपके भक्त श्रावकों ने सैकड़ों स्थानों पर गुरु-मन्दिर बनवाकर उनमें आपकी मूर्तियें एवं पादुकाएं प्रतिष्ठित की हैं जिनकी बड़े ही भक्ति भावसे उपासना

७ श्री जिनदत्तसूरि के भक्त श्रावकों का कुछ उल्लेख पृ० ११-१७ में किया गया है उनके अतिरिक्त आपकी कृपा से सुखी होने वाले गोल्ल श्रावक का उल्लेख सं० १२८१ में लिखित सटीक हैमानेकार्थ संग्रह की पुष्पिका में आता है। ये धर्कट वंश के पार्श्वनाथ के पुत्र थे। सूरिजी के भक्त होने पर इनका दारिद्र्य नष्ट हो गया था और धर्ममार्ग में विशेष अग्रसर हो कर मरुकोट में सिद्धसेन राजा के समय में चन्द्रप्रभ स्वामी का उत्तुंग जिनालय बनवाया जिसकी प्रतिष्ठा इनके पट्टधर अधिकारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने की थी। इस गोल्ल श्रावक ने रोगियों के लिये औषधालय आदि लोककर परोपकार के बहुत से कार्य किये थे। इस उल्लेख वाली पुष्पिका मुनि जिनविजयजी सम्पादित जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह पृ० १ में छपी है। श्रीमस्मर

१ श्री जिनदत्तसूरिजी ... इस बार ... मुद्रित होने के ... दी जा सकी है। किसी सज्जन को इनकी पूरी पर [illegible] मिले तो हमें सूचित करने की कृपा करें।

आभार प्रदर्शन—

प्रस्तुत चरित्र लेखन एवं सम्पादन में जिन जिन विद्वानों की सहायता प्राप्त हुई है उन सब का हार्दिक आभार मान किना हम

* इनमें से कतिपय गुरु महाराजों के ... इत्यादि इन ... जिनदत्तसूरि स्तुति आदि इसके आगे ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में प्रकाशित हो चुके हैं।

नहीं रह सकते। पुरातत्त्वाचार्य मुनि श्री जिनविजयजी जिन्होंने हमारे प्रस्तुत ग्रन्थ को प्रकाशित करने के लिए भारतीय विद्या तृतीय खण्ड में प्रकाशित जैसलमेर ज्ञानभण्डार स्थित काष्ठपट्टिकोपरि उल्लिखित चित्र प्रगट हुए हैं वे चित्र ब्लॉक भेज कर हमारे कार्य में योगदान दिया है। एवं बीकानेर महाराजकुमार कालेज के प्रधान अध्यापक श्रीयुत् पण्डितवर्य्य दशरथजी शर्मा एम ए डी लिट् के विशेष आभारी हैं जिन्होंने राजकीय कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी प्रस्तावना लिख देने का कष्ट किया है। साहित्यरत्न मुनिराज श्रीकान्तिसागरजी महाराज ने इस पुस्तक की भूमिका लिखी है इसके सम्बन्ध में विशेष लिखकर अनात्मीयता प्रगट करना नहीं चाहते। आशा ही नहीं पर हमें पूर्ण विश्वास है कि हमारे अग्रिम साहित्योद्धार कार्य में इन एवं अन्यान्य विद्वानों द्वारा अवश्य ही इसी प्रकार का सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

तुलसी जयन्ती, सं० २००१

अगरचन्द्र नाहटा
भँवरलाल नाहटा।

स्वर्गीय पूज्य शंकरदानजी नाहटा

का

जीवन परिचय

प्रत्येक मानव की विशेषता उसके गुणोंपर निर्भर है पर किसी भी एक गुण का समुचित विकास होने पर उसका जीवन एक आदर्श उपस्थित कर देता है। जिस व्यक्ति में अधिकाधिक गुणों का समुचित विकास हो पाया हो उसकी जीवनी दूसरों के लिये पथप्रदर्शक बन जाती है और उसे महापुरुष की संज्ञा दी जाती है। स्वर्गीय पूज्य पिताजी कुछ ऐसे ही गुणों के पुञ्जभूत महापुरुष थे। मुझे उनकी छत्र-छाया में रहनेका विशेष अवसर मिला है अतः पाठकों की जानकारी के लिये संक्षेप में आपका परिचय उपस्थित करता हूं।

जन्म व विवाह—

आपका जन्म बीकानेर से १८ मील दूर अवस्थित दौदूसर गांव में नाहटा बेगराजजी के पुत्र राजरूपजी के घर में सं १९१ के मिती आषाढ़ बदि ८ बुधवार को हुआ था। ग्रामीण जीवन के शुद्ध वातावरण में वृद्धि पाते हुए योग्य वय में आवश्यक शिक्षा प्राप्त की। उन दिनों बालविवाह की प्रथा विशेषतः प्रचलित थी और आप

अपने सद्गुणों से अपने पिता माता भाई भगिनी आदि प्रियजनों के अत्यन्त प्रीतिपात्र थे अतः १२ वर्ष की अवस्था में ही सं १९४१ मिती वैसाख कृष्णा ५ को आपका शुभविवाह आपके ननिहाल छत्तरपसर में शहर-सारथी आदि कार्यों द्वारा प्रतिष्ठिप्राप्त सेठ नथमल जी बोथरा के सुपुत्र मोतीलालजी की ज्येष्ठ पुत्री चुन्नी बाई के साथ हो गया। बाल्यकाल से ही आप बड़े परिश्रमी और उद्योगी थे। ग्राम में रहने के कारण खेतीबाड़ी और व्यवहारिक कार्यों में योग्यता कर ली।

व्यापार प्रवेश–

आपके चाचा देवचन्दजी और उनके पुत्र मोमचन्दजी एवं मोती चन्दजी बीकानेरमें रहने लग गये थे और वहां हुण्डी चिट्ठीके लेन देन का सराफ व्यापार बड़े पैमाने में चालू किया था। सैकड़ों गावोंसे इस व्यापार का घनिष्ठ सम्बन्ध था। उन्होंने पूज्य पिता श्री को बहुत योग्य समझकर बीकानेर में लाकर इस व्यापार का सारा ज्ञान उन्हें भली भांति करा दिया। व्यापारकुशल होनेपर आप अपने चाचा उदयचन्द जी द्वारा स्थापित दुकान-गवालपाड़ा में जो कि बीकानेर से १६ मील दूरवर्ती आसाम प्रान्त में है सं १९६५ के आश्विन सुदि १ को रवाना होकर पधारे। यहां की दुकान सं १९६९ के लगभग जब कि मालगाड़ी के साधन बहुत विकट एवं विषम थे उदयचन्दजीने प्रबल साहस के साथ गवालपाड़ा जाकर स्थापित

की थी और २२ वर्ष बेम शोभकाल तक वहीं रहकर इसकी साख प्रतिष्ठा बढ़ाई थी। उनके सुपुत्र और चरित्रनायक के पिता सेठ रामरूपजी ने भी ११ वर्ष की लम्बी मुसाफिरी करके अपनी नीति निपुणता, सफलता और मिलनसारता से इस फर्म की काफी उन्नति की। इसके पश्चात् आपने पधार कर यहां के व्यापार तलकी बागडोर सम्भाली और क्रमशः उन्नति करते हुए व्यापार का विस्तार किया।

साहस और सेवा–

सम्वत् १९५४ में गवालपाड़ा में एक भयानक भूमि-कम्प हुआ। वहाँ के लोगों के लिये उसने प्रलयकाल का रूप उपस्थित कर दिया। मकान भूमिशायी हो गये रास्तों में जमीन फटकर गहरी दरारें पड़ गई। पृथ्वी के अन्दर से जल निकलने लगा और ऊपर से वर्षा होने लगी। सब जल जलाकार होगया इसा तूफान और कड़ाके की सरदी पड़ने लगी। कहांतक लिखा जाय इसके अनुभवको करने वाले ही जानते हैं। धनमाल की तो बात ही क्या प्राणों के लाले पड़ रहे थे। कमजोर हृदय वाले भयभीत होकर अब क्या करें? यहां जानें मरण आगया है कहने लगे तब आप उन्हें साहस बंधाकर साहस से स्वयं पहाड़ पर ले गये। वह पहाड़ था ठंड बहुत कड़ाके की थी वहाँ से सब लोग कांपने लगे और भूख से व्याकुल हो गये। तब आपने कई साथियों के साथ हाथ में कंधे लेकर जीवन मरण की

कोई परवाह न करते हुए जनता की रक्षा के हेतु पहाड़ से नीचे आकर सबकी दुकानें लगाओ। संयोग से उस समय एक दुकान में किसी मारवाड़िक प्रयत्न से सीया रखा हुआ पड़ा था उसकी अलमारी को ले आकर सबको जिमाया। बची हुई दुकानों से कुछ मारकीन के थान निकाल कर ऊपर ले गये और उसके टुकड़े फाड़ फाड़ कर यह कहते हुए बांट दिये कि जो जीवो तो यह वेष्टन है और मरो तो कफन है' इस सेवा से लोग बड़े सन्तुष्ट हुए और आपने असीम पुण्योपार्जन किया। यह भूमिकम्प कई दिन जारी रहा था।

आसाम प्रान्त में भागत जैनों ने अपने धार्मिक प्रेम का प्रतीक पार्श्वनाथ भगवान का मन्दिर गवालपाड़ेमें भी स्थापित किया था भूमिकम्प से वह धराशायी हो गया पर भगवान पार्श्वनाथ का असीम चमत्कार ही समझिये मूर्ति ज्यों की त्यों सब सामान के साथ सुरक्षित पाई गई इससे लोगों को बड़ा हर्ष हुआ और भक्ति बढ़ी। फलतः भूमिकम्प के बाद दो बारापर मन्दिर का पुनर्निर्माण करवाया गया और इसकी प्रतिष्ठा स० १९५८ में पू० बख्तावरजी यति द्वारा करवाई गई। आपका विचार था कि यहां पर मन्दिर के उपयुक्त विशाल मूर्ति प्रतिष्ठित की जाय और इसके लिये बहुत स्थानों में मूर्ति की तलाश करने के लिये भ्रमण कर बीकानेर के बड़ा गच्छीय श्रीपूज्य जी से प्रतिमा लेना ते भी कर लिया था पर यति के समय भगवान पार्श्वनाथ की निरोधाज्ञा होने से यह विचार स्थगित रखना पड़ा। उक्त प्रतिष्ठा में आपका सहयोग उल्लेखनीय था।

मंदिर का निर्माण करना कोई बड़ी बात नहीं है पर उसकी व्यवस्था के सम्बन्ध में दीर्घ दृष्टि से विचार करने वाले विरले ही होते हैं इसी कारण बहुत से मन्दिरों की व्यवस्था पीछे से बिगड़ जाती है। आपने इस बात का अनुभव करते हुए गवाकपाड़ा मंदिर के लिए अपने व्यक्तित्व से सब लोगों को समझा बुझाकर इस मंदिर की व्यवस्था के लिए बड़ा ही सुन्दर प्रबन्ध कर दिया जिससे किसी व्यक्ति को बोझा न मालूम हो और कार्य भी सुचारु रूप से चल सके। वह व्यवस्था यह थी कि यहां सरसों की आमदनी बहुत होती थी अतः उस पर ।) आना सैकड़ा विधी (धार्मिक लाग) बांध दी आगे चलकर जब सरसों की आमदनी कम होकर दूसरी ओर से आने लगी तो यह (विधी) मुरब्बे पर भी लागू कर दी गई इससे सदैव ही में मन्दिरजी ठाकुरबाड़ी रामदेवजी व शनिजी के मंदिर का सारे खर्च चलने के अतिरिक्त हजारों रुपये जमा हो गए। यह आपकी दूर-दर्शिता का ही सुफल था।

व्यापार विस्तार—

व्यापार की मूल भित्ति प्रामाणिकता और सद्व्यवहार पर ही अवलम्बित है। आपने अपने व्यापारगण को इन गुणों से ऐसा सम्पन्न किया कि आज भी आपके जितने फर्म हैं सभी की बाजार प्रतिष्ठा इतनी अधिक बढ़ी हुई है कि मात्र बेचनेवाल दूसरों से अधिक

मूल्य पान पर भी आपक धन को कम मूल्य में ही देने को राजी होते है। क्योंकि लगान की सफाइ, ठीक आपकी प्रामाणिकता और किसी भी तरह के छूट समझ न करके उनके प्रति सद्व्यवहार किया जाता है। भ्रमवश पहले पर बकन की सही जांच के लिए इस फर्म के कौन्टे बहुतरे के बाद निश्चय किया जाता है और हर एक व्यक्ति के हृदय में आपके फर्मों के प्रति सद्भाव और श्रद्धा है। अतः आपकी गद्दियें बड़ी गद्दी के नामसे एव प्रामाणिकता के लिए प्रसिद्ध हैं।

गढ़ाकपाड़े का पौधा तो आपश्री के बाबाने लगाया था पर आपके समय में वह खूब फलाफला और उसकी शाखा का विस्तार दिनों दिन बढ़ने लगा। स १९५८ मे गढ़ाकपाड़े से १ मील आपड नामक स्थान में स १९६५ में सोमपुर में स १९७ में कलकत्ता स १९८ के कार्तिक वदि १५ को सिकदर और स १९९१ में बाबूराह की दुकानों की स्थापना हुई। आपके स्वर्गवास के पश्चात् इयरल और अमृतसर में भी फर्म स्थापित हुए हैं। यह सब आपका ही पुण्यप्रभाव है।

सन्तति—

सुयोग्य पिता की सन्तान भी वैसी ही गुणवान् और योग्य हुआ करती है। स १९४१ में आपके प्रथम कन्या सोनकु वर बाई उत्पन्न हुई जो बहुत ही मिलनसार धर्मिष्ठा और गृहकार्य निपुण थी। स १९५२ म मेरूँदानजी का स १९५५ के मे व ६ में

अभयराजजी का जन्म हुआ। स्वर्गीय अभयराजजी जैसे पुत्ररत्न विरले ही होते हैं। उन्होंने अपने सद्गुणों से सारे परिवार को ही नहीं किन्तु जिस किसी से भी एक बार मिले मुग्ध कर लिया था। इनकी जैसी विचारकता धैर्य सहनशीलता सरलता और धर्मानुराग क्वचित् ही भाग्यशाली पुरुषों में पाये जाते हैं। आपका स्वर्गवास युवावस्था के प्रारंभ में ही सं १९७७ मिती जेठ कृ ७ को जयपुर हो जाने से पिताजी एवं सारे परिवार पर वज्राघात सा हो गया और जीवनभर इन सुपुत्र के गुणों को स्मरण करते रहने पर भी वे भूल न सके थे। इनका संक्षिप्त परिचय 'अभयरत्नसार' जो आपकी स्मृति में प्रकाशित किया गया था में दिया गया था। जिस ग्रन्थमाला के १२ वें पुष्प के रूप में प्रस्तुत ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है यह ग्रन्थमाला भी पिताजी ने इन्हीं की स्मृति में स्थापित की थी और आज आपके शुभ नाम से एक बहुत बड़ा ग्रन्थालय प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखकों के अथक परिश्रम के द्वारा बीकानेर में स्थापित है जिसका संक्षिप्त परिचय राजस्थान भारती के प्रथमांक में प्रकाशित है।

इनके पश्चात् सं १९५८ में शुभराजजी का जन्म हुआ जो बड़े साहसी और व्यापार कुशल हैं। सं १९६ में मगनकुंवर का सं १९६२ में स्वर्गवास था और सं १९६५ के मिती भाद्रव वदि ११ को मेघराज का जन्म हुआ। सं १९६७ मिती चैत वदि ४ को मेरे अनुज भंवरलाल ने जन्म ग्रहण किया जिसके बाद

प्रायः समस्त साहित्य संसार में प्रसिद्ध है। इस प्रकार आपके ६ पुत्र और २ पुत्रियाँ हुईं जिनमें से सोनकुंवर भंवरराजजी और मोहनलाल स्वर्गवासी हो चुके हैं। सं. १९९८ के आश्विन कृष्ण ११ को आपके ज्येष्ठ पुत्र भैरूदानजी के भंवरलाल नामक पुत्र हुआ जो साहित्यिक कामों में अगरचन्द का सहयोगी है। इसके पश्चात् आपके अनेक पौत्र पौत्रियें दोहित्र दोहित्री प्रपौत्र प्रपौत्रियों का जन्म हुआ। संक्षेप में आपका पारिवारिक जीवन बड़ा सुखी समृद्ध और सफल रहा है।

पूज्य पुरुषों की सेवा—

भारतीय संस्कृति में अपने से बड़े सभी पारिवारिक लोग पूज्य माने जाते हैं और उनकी सेवा करना किसी भी सपूत के लिए आवश्यक माना जाता है। आपके जीवन में यह संस्कृति खूब मिल गई थी। आपने अपने से बड़े सभी पारिवारिक जनों का आदर किया और उनकी सेवा में तनिक भी आलस्य प्रमाद पास न फटकने दिया। अपने पूज्य माता पिता के अतिरिक्त अपने चाचा, बड़ी माई भौजाइयां आदि की महान् सेवा कर उनका जो भारी आशीर्वाद प्राप्त किया वह अनुकरणीय है। अपने चाचा हेमचन्दजी के पुत्र मोमनिदजी व मोतीलालजी का तरुणावस्था में ही स्वर्गवास हो गया था अतः आपने अपनी दोनों भौजाइयों की सारी जिन्दगी

तक बड़ी भारी सेवा बजाई। उनकी प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य करना आपके जीवन का एक आवश्यक अंग हो गया था। अपने बड़े भ्राता दानमलजी की तो उन्होंने ऐसी भक्ति की और आजीवन उनके वचनों को जिस तत्परता के साथ निभाया वा उनके सारे कार्यभार को स्वयं वहन कर उन्हें निश्चिन्त बनाया। कई बातों में अपनी अनिच्छा रहते हुए भी उनकी इच्छा और आज्ञा को प्राधान्य देकर सर्वदा उन्हें संतुष्ट रखने का प्रयत्न किया ये सब बातें किसी भी तरह भुलाई नहीं जा सकतीं। अन्त में उनके निःसन्तान होने पर आपने पुत्र (तिलक) को उनका दत्तक पुत्र बना कर उनका नाम कायम रखा। इसी प्रकार आपने ज्येष्ठ भ्राता लक्ष्मीचन्दजी की बहू की भी आजीवन सेवा की। उनकी पुत्रियों के विवाहादि का सारा कार्य बड़ी लगन से सम्पन्न किया और अन्त में उनके नाम को भी कायम रखने के लिए पहले अपने पुत्र अभयराजजी को और उनके स्वर्गवासी होने पर अपने बड़े पौत्र भंवरलाल को उनके गोद दिया।

आपने कौटुम्बिक लोगों के साथ ही नहीं पर अन्य सभी वयोवृद्ध एवं गुरुजनों के प्रति आपकी पूज्य बुद्धि और सेवाभाव रहता था जिसके उदाहरणों को संग्रह करने पर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ तैयार हो सकता है। अपने से छोटे व्यक्तियों के साथ भी आपका व्यवहार बड़ा ही प्रेम और वात्सल्यपूर्ण था।

धर्मानुराग—

मानव जीवन की सबसे बड़ी साधकता व्यक्ति के धार्मिक भाव नाओं में अन्तर्निहित है। धर्म के बिना जीवन शून्य एवं विफ है। आपके धार्मिक संस्कार प्रारम्भ से ही अत्यन्त दृढ़ थे। नित प्रातःकाल शीघ्र उठ कर स्नानादि से निवृत होकर नियमित सामायि और पूजापाठ करना आपके जीवन का एक आवश्यक अंग बन ग था इसके बिना आप कभी मुंह में जल तक नहीं लेते थे। आप अपने जीवन के अन्त तक इस नियम को निभाया। इसके अतिरि प्रति दिन जिनदर्शन धर्म गुरुओं से व्याख्यान श्रवण समय-समय व्रत उपवासादि करना अपने जीवन को संकलित बनाना आ अनेकानेक धार्मिक आचरणों के प्रति आपका पूर्ण अनुराग था चतुर्दशी का व्रत-उपवास आपने दीर्घकाल तक पालन किया उसको पालन करते हुए ही उसी तिथि को आप स्वर्गवास हुआ था। रात्रि भोजन का तो आपको वर्षों त्याग था।

आचार्य म श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी के सं० १९८४ में बीकाने पधारने पर आपने उन्हें अपने स्थान में ही ठहरा कर बड़ी भा से उनकी सेवा की। उनके उपाश्रय का निर्माण एवं ज्ञानभंडार देखभाल आपने बड़ी तत्परता से की। इस प्रकार अन्य मुनाधु की भक्ति करने में भी आप सदा तत्पर रहा करते थे। श्रीजिनकृपाच

सूरि धर्मशाला के आप ट्रस्टी थे। इसी प्रकार बड़े उपाश्रय के ज्ञान-भंडार के वर्षों तक आप ट्रस्टी रहे। स्थानीय जैन श्वे॰ पाठशाला के आप सभापति थे। आपके स्वर्गवास के दिन पाठशाला बंद रही।

जिनदत्तकृत श्रावक की करणी का स्वाध्याय भी आप प्रायः किया करते थे और उसमें कथित आदर्शों के अनुसार आपका जीवन भावशोधित हो गया था। परस्त्री के तो आप सदा त्यागी ही रहे और अन्तिम जीवन में चतुर्थ (ब्रह्मचर्य) व्रत भी धारण कर लिया था। अन्य चार अणुव्रतोंका पालन भी आपका सहज संस्कार हो गया था। हिंसा झूठ चोरी और अतिशय लोभ के प्रति आपकी तीव्र घृणा थी।

तीर्थ यात्रा—

तीर्थंकरों आदि महापुरुषों के जीवन से सम्बन्धित व अन्य प्रसिद्ध सभी जैन तीर्थों की आपने कई बार यात्रा की थी। कई बार यात्राओं में आप बहुत ही कष्ट सहते हुए अपने परिवार व अन्य लोगोंके साथ लम्बी लम्बी यात्राएं की और उन सहगामी यात्रियोंकी व्यवस्था का सारा भार भी आपने अपने ऊपर लिया था। इसके द्वारा आपने अनेक यात्रियोंके आशीर्वाद प्राप्त करते हुए पुण्योपार्जन किया था। आपके साथ गये हुए यात्री एवं मिलने वाले आज भी आपके नाम के स्मरण आते ही गद्गद् हो जाते हैं। तीर्थस्थानोंके प्रति आप का हृदय बड़ा श्रद्धालु था। [illegible]

करते तो आप अपना कार्य छोड़ कर भी तत्काल उनका काम कर देते।

नाड़ी और औषधि का आपको अच्छा ज्ञान था। कई रोगी आपके प्रयोगों व दया से जीवन दान पा गये। म्यादी बुखार के तो आप विशेषज्ञ थे। सैकड़ों व्यक्ति ऐसे रोगों में आपको देखाकर रोगी को दिखाते और सलाह लेते थे। आपका द्वार सब समय खुला था। रात को १२ बजे या २ बजे जब कभी भी आपको किसी रोगी को दिखाने के लिए कोई बुलाने आता तो आप सब काम छोड़ कर अपने शरीर की भी परवाह न करते हुए उसके साथ हो जाते और उसे सान्त्वना और सत् सलाह के द्वारा सन्तुष्ट कर देते थे। इसी प्रकार अन्य कष्टों के समय भी तन मन धन से आप दूसरोंकी भलाई करने में सदा प्रयत्न किया करते थे। परोपकार के कार्यों में आपने किसी को कभी इन्कार नहीं किया। संक्षेप में परोपकार करते रहना आपका जीवन का सहज धर्म कहा जा सकता है।

कष्ट सहिष्णुता—

प्रत्येक मनुष्य के जीवन में कई उथल पुथल हुआ करते हैं। किसी के भी सब दिन सरखे नहीं होते। फिर बाधाएं पग पग पर उपस्थित रहती हैं अतः उन पर धैर्य के साथ विजय प्राप्त करना और अपना समतोलपना न खोना मनुष्य के विवेक का मापदण्ड है।

समय समय पर आपको अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा पर आप सदा अचल रहे, आपने उन्हें समभाव से सहन किया। साधारण कष्टों की ओर तो आपने ध्यान ही नहीं दिया पर बड़ी बड़ी आपदाओं के समय भी आपने कष्ट सहिष्णुता और सहन-शीलता का अपूर्व परिचय दिया। साधारण शारीरिक वेदनाओं और रोगों के उपस्थित होने पर आप उन्हें किसी को बतलाते तक नहीं थे। अपने-दादाजी के स्वर्गवास के पश्चात् आपको श्वास श्वास का भयानक रोग हो गया था। सारी रात श्वास का उठाव होने पर आप बैठे रहते पर कभी किसी पर बाके के समय भी वेदना प्रकट नहीं होने देते थे। अपने सारे कष्टों को अकेले ही समभाव से सहन कर लेना आपका असाधारण गुण था। कई बार आपको बड़े २ शारीरिक कष्ट सहन करने पड़े पर कभी ओफ् तक न की।

अपने शरीर के लिए इतनी अपेक्षा होते हुए भी दूसरे किसी के रोग उत्पन्न होने पर आप उनकी परिचर्या में रात दिन एक कर देते थे। अर्थात् दूसरों के आराम के लिए वे अपने कष्टों की कोई परवाह न करते थे।

कार्यदक्षता और कर्मठता—

किसी दो चार कार्यों में निपुणता प्राप्त कर लेना तो साधारण बात है पर जीवनोपयोगी प्रत्येक कार्य में निपुण बन जाना विरले

व्यक्ति ही नजर आते हैं, आप उन अपवादों में से एक थे। छोटे से छोटे और बड़े बड़े किसी भी कार्य को आप बड़ी दक्षता से कर सकते थे। आवश्यक होने पर अपनी विविध कलाओंका उपयोग कर दूसरोंको चमत्कृत कर देते थे। रसोई बनाना हो तो उसमें भी आप सिद्धहस्त गोदोहन और पशुपालन में मकान की मरम्मत करने में बढ़ई के काम में सिलाई के काम में कृषि कार्य में तोल बोल में, खाता बही हिसाब पत्र में, मिठाई आदि बनाने में कहां तक कहा काम जीवनोपयोगी ऐसा कोई कार्य अवशेष न था जिसे वे सुचारु रूप से सम्पादन न कर सकें। जीवनोपयोगी किसी काम को आप छोटा नहीं समझते और साधारण से साधारण काम पशु सेवा तक का कार्य अपने हाथ से उसी रस से कर लेते किसी भी कार्य के प्रति उनकी घृणा या उपेक्षा नहीं थी।

प्रत्येक कार्य की सफलता सच्ची लगन और अविश्रान्त परिश्रम पर आश्रित है। आप जिस कार्य को हाथ में लेते पूर्ण किये बिना नहीं छोड़ते थे और अपना तनिक भी समय व्यर्थ न गंवा कर सब समय किसी न किसी कार्य में लगाये ही रखते थे। व्यापारिक खातापत्रों को ठीक एवं निरीक्षण करते तो दिन रात उसी में तल्लीन हो जाते। इसी प्रकार आप को कोई भी कार्य करना प्रारम्भ करते तो अपनी सारी शक्ति उसी की सफलता में लगा देते। वस्तुतः आप अकेले व्यक्ति जितना अधिक एवं सुन्दरता से कार्य कर सकते आज उसी

काम के लिये हम चार भाई मिलकर भी तारतू करने में अपने को असमर्थ पाते हैं।

सादगी और मितव्यय–

सत्ता और सम्पन्नता होते हुए भी जो व्यक्ति निरभिमानी सदाचारी और सादगी से रह सकता हो वही संसार के लिये एक आदर्श पुरुष कहा जा सकता है। आप सब तरह से समृद्धि सम्पन्न होने पर भी बड़े ही सरल और सादगी के अवतार थे। अभिमान तो आपको छू तक न पाया था और विलासी जीवन तो आपसे कोसों दूर था। कड़ी धूप में ५, ६ मील पैदल चलके जाना आपके लिये साधारण बात थी। वेष भूषा भी आपकी बहुत ही सीधी सादी थी। आपका भोजन भी बड़ा सात्विक रहा है किसी भी खाद्य पदार्थ पर आपने रुचि और अरुचि नहीं दिखाई। कोई भी व्यक्ति उन्हें देखकर उनकी श्रीसम्पन्नता का पता नहीं लगा सकता था। अपने जीवन की आवश्यकताओं को उन्होंने बहुत ही सीमित कर रखा था। बिना मतलब के एक पैसा भी खर्च न करना और आवश्यक होने पर हजारों की भी परवाह न करना इस स्वर्ण सूत्र को आपने आजन्म पालन किया। पुराने रीति रिवाज एवं मर्यादाओं को वे यथावत् पालन करते थे। हिसाब आप पैसे पैसे का लिखते और विवरण लिखना आपका इतना सुन्दर होता था कि जिसके आधार से

हरेक मनभिज्ञ व्यक्ति भी लाभ उठा सकता है यह कला उनके जीवन की एक विशेष वस्तु थी।

किसी भी बात को हूबहू वर्णन करने में आप बड़े कुशल थे। किसी घटना या ग्राम का वर्णन करने लगते तो उसका चित्र सा खींच देते थे।

आपकी स्मरणशक्ति भी असाधारण थी। बाल्यकाल से लेकर मरने पर्यन्त घटनेवाली समस्त घटनाएं उन्हें भली भाँति स्मरण थी। प्रायः १ वर्ष की अवस्था के बाद की घटनाओं को तो आप संवत् मिति और समय के निर्देश के साथ बतला दिया करते थे। परिवार के किस व्यक्ति की कब मृत्यु हुई कौन कब जन्मा कब वे कहाँ गये इत्यादि बातें पूर्णरूप से स्मरण थी।

स्वर्गवास–

पुण्यवान जीव के बिना समाधिमरण प्राप्त होना सम्भव नहीं है। जीवनभर की अखण्ड साधना से आपके पुण्य प्राग्भार की अतिशय वृद्धि हो चुकी थी। आपकी इहलीला-संवरण कथा बड़ी विस्मयकारी है। सं० १९९९ के माघ शुक्ला १४ के दिन आपके चतुर्दशी का चौविहार उपवास था। बाजार से घूमकर प्रतिक्रमण करने के निमित्त संध्या से कुछ पूर्व आप घर पधारे और दीवानखाने में एक तकिये के सहारे बैठे। अमरचन्द जी जो कि उस समय किसी व्यावसायिक कार्य में व्यस्त था आपके आने से प्रतिक्रमण करने के लिये तैयारी करने

लगा उस समय आपने कहा कि प्रतिक्रमण तो करना ही है पर मेरे हृदय में कुछ वेदना सी हो रही है अतः थोड़ा तेल ले आओ। मालिश करके फिर प्रतिक्रमण करेंगे। उनकी आज्ञानुसार तेल मालिश किया गया और उसी समय सुमेरमलजी को यह बात मालूम हुई तो माघ का महीना था सरदी के कारण छाती में दर्द हो गया होगा समझकर सगड़ी ले आये और सिकाव करने लगे। ये दोनों भाई वस्त्र गरम करके उनके हाथ में दे रहे थे और वे स्वयं अपने हाथ से सेक कर रहे थे। कुछ समय के पश्चात् उन्हें नींद सी आते देख सेक बन्द कर दिया गया। कुछ क्षण में ही आपसे सटकर बैठे हुए भाई अगरचन्द ने आपके शरीर की एक कम्पन का अनुभव किया और पास ही बैठे हुए सुमेरमलजी को इसकी सूचना देते हुए वस्त्र से ढँके हुए मुँह को उघाड़ कर देखा तो वह पुण्यात्मा स्वर्ग प्रयाण कर चुकी थी। सहसा किसीको यह विश्वास नहीं हुआ मैं भी उनके पास पहुँचा था सूर्यनारायणजी आसोपा भी आये पर वहां कुछ अवशेष न था। त्वरागति से यह बात सर्वत्र फैल गई पर किसी को यह विश्वास नहीं हुआ क्योंकि कुछ समय पूर्व किसी ने उन्हें गवाड़ में तो किसी ने उन्हें बाजार में देखा था। हृदय की गति बन्द हो गई और प्रतिक्रमण करने के विचार में उनकी आत्मा हम सबको विरह के परम सन्ताप से दग्ध कर स्वर्ग सिधार गई।

जीवन का साफल्य प्राप्त करनेवाले पितृदेव की पवित्र स्मृति में सादर श्रद्धाञ्जलि समर्पित है।

मेघराज नाहटा

प्रस्तावना

महान् जैन आचार्य श्री जिनदत्तसूरि का जीवनचरित्र प्रकाशित कर नाहटा-बन्धुओं ने साहित्य एवं धार्मिक उद्धार को पुनः उपकृत किया है।

आचार्यवर श्री जिनदत्तसूरि ने भारत के परम अनैक्य के युगमें जन्म ग्रहण किया था। उस समय उत्तरी भारत अनेक परस्पर लड़ने वाले राज्यों में विभक्त था। गुजरात के महाराज्य में संवत् ११५० तक कर्ण त्रैलोक्यमल्ल लगभग संवत् १२ तक जयसिंह सिद्धराज और उसके बाद परमार्हत श्री कुमारपाल का शासन था। मालवे में नरवर्मा यशोवर्मादि राजा हुए और सूरिवर के जीवन काल में ही सिद्धराज जयसिंह ने उस देश को जीत कर गुजरात महाराज्य में सम्मिलित कर लिया। नाडोल जालोर आदि के राजा भी तेरहवीं शताब्दी के अन्तिम भागमें गुजरात साम्राज्य की अधीनता स्वीकार करते थे। अजमेर नागौर सांभर आदि में चौहानों का शक्तिशाली राज्य था। आचार्यवर श्री जिनदत्तसूरि का विशेष सम्पर्क इसी वंशके प्रसिद्ध एवं प्रतापी राजा श्री अर्णोराज से हुआ। युक्तप्रान्त में गाहड़वालों का प्रबल राज्य उसी समय वर्तमान था। मुसलमान भी उस समय भारतवर्ष में प्रवेश कर चुके थे। पंजाब मुलतान और सिंध के कुछ भाग मुसलमानों के अधिकार में थे।

धार्मिक क्षेत्रमें प्रायः उतना ही अनैक्य था। राजस्थान में बौद्ध धर्म का विशेष प्रभाव न था किन्तु पाशुपत कापालिक, शाक्त भागवतादि अनेक सम्प्रदाय वहां वर्तमान थे। इनमें कई हिंसावादी एवं रक्तबलि आदिमें विश्वास करते थे। जैनधर्म श्रीजिनवल्लभसूरि के उपदेश से किसी अंशमें परिशुद्ध एवं स्वच्छ हो चुका था किन्तु शिथिलाचार अभी सर्वथा नष्ट न हुआ था। कई स्थानों में अभी चैत्यवास जोरपर था कई स्थानोंमें सुविहितमार्ग के उपदेशकों की अब तक आवाज ही न पहुँची थी।

यह मन्त्रवाद तन्त्रवाद और भूतवाद का युग था। कई महात्माओं को उत्कट योग सिद्धियां भी प्राप्त थीं किन्तु उनका सर्वथा सदुपयोग कुछ कठिन सा हो चला था। तत्कालिक ग्रन्थों को पढ़ने से कम से कम इतना तो निश्चित है कि प्रायः सभी भारतीय भूत प्रेत एवं मन्त्र-तन्त्र में विश्वास करते थे।

जातिव्यवस्था इस समय पर्याप्त दृढ़ हो चुकी थी ब्राह्मणों को ब्राह्मणत्व और अन्य जातियों को अपनी जाति एवं वंश का पूर्ण गर्व था। राजनैतिक और धार्मिक अनैक्य के साथ साथ भारत में यह सामाजिक अनैक्य भी पूर्णतया वर्तमान था।

भारत किसी समय अपने उच्च नैतिक विचारों के लिये जगत् विख्यात था। श्री भगवान् महावीर एवं भगवान् बुद्ध की विहार भूमि मगध अपने सदाचार के लिये विशेष प्रसिद्ध थी। गौड़

यात्रियों ने लिखा है कि मगध में चोरी और असत्यका अभाव था। गुप्तकालमें भी भारत उन्नति के शिखरपर रहा। किन्तु उसके बाद अनेक विधर्मियों के आक्रमणों के कारण कुछ स्वाभाविक प्रमत्तता के कारण एवं कुछ धनाधिक्य के कारण शिथिलाचार ने भारत में प्रवेश ही नहीं किया अपितु वहा अपना घर बना लिया। अनेक महात्माओं ने इसका समय समय पर विरोध किया। संवत् ११४७ में इस महान विरोध के कारण नाडोल के चौहान राजा जोजलदेव ने अपनी आज्ञा निकाली और उसे अनेक स्थानों में उत्कीर्ण करवाया। उसमें लिखा है कि एक मन्दिर से समस्त वेश्याओं को अपने वर्ग सहित दूसरे मन्दिर की यात्रामें भाग लेना पड़ेगा। किसी आचार्य ने या बड़े आदमी ने इसका विरोध किया तो उसे दण्ड दिया जायगा। उसके वशजों का कर्तव्य होगा कि व इस आज्ञा का पूर्णतया पालन करवाए।

खरतरगच्छ के आचार्यों का मैं तो सब से बड़ा कार्य यही समझता हू कि राजविरोध जनविरोध और विरोध की कुछ परवाह न कर उन्होंने अनाचार एवं अनैक्य की जड़ पर कुठाराघात किया। उन्होंने जैनधर्म का मार्ग सब प्राणियों के लिये खोलकर सबको समानाधिकार देकर एकता सूत्र में बाधने का प्रयत्न किया। मंदिरों में वेश्याओं के नाच को बन्द किया रात्रि के समय मंदिरों में स्त्री प्रवेश का निषेध किया और वेश्यादि का त्याग कर जिन शासन का पूर्णतया

अवशेष आज भी उपलब्ध है। जो वर्तमान मानव समाज को पूर्व प्रचलित सांस्कृतिक तत्त्व के सूचक हैं।

जैनों ने भारतीय संस्कृति के प्रचार-विकास और पुष्टि करने वाले विभिन्न प्रकार के सब श्रेणी के आलोचनात्मक साहित्यिक ग्रन्थ निर्माण कर इस धारा के प्रवाहगत वेग को अविरत उन्नति के लिए नवीनतम विचारोत्तेजक तत्त्वों से आप्लावित किया। इन महान कार्यों को करने में अधिकतर सहयोग त्याग प्रधान जैन संस्कृति के प्रतीक मुनियों का एवं कतिपय उच्च गृहस्थों का योग रहा है।

जैन संस्कृति श्रमण संस्कृति में विभिन्नता नहीं है, इन दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। श्रमण संस्कृति के गौरव को बढ़ाने वाले अनेक ज्योतिर्धर जैनाचार्य पूर्वकाल में हो चुके हैं, जिन्होंने न केवल जैन संस्कृति को ही उन्नत किया पर साथ ही साथ भारतीय संस्कृति में जो विकृतियें आ गई थीं उनको दूर करने के लिए भागीरथ प्रयत्न कर शुद्धतम आध्यात्मिक साधनाओं का संरक्षण एवं विकास किये। उन आचार्यों में आचार्य श्रीहरिभद्रसूरिजी श्रीजिनेश्वरसूरिजी श्रीजिनवल्लभसूरिजी एवं श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज तथा इनके पट्टधर मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरिजी एवं श्रीजिनपतिसूरिजी आदि सुविहित परमत्यागी आचार्य मुख्य हैं। इन सभी का यदि आलोचनात्मक इतिहास तैयार किया जाय तो संसार को विदित हो जायगा कि इन आचार्यों ने श्रमण-संस्कृति की रक्षा के

लिए क्रान्तिपूर्ण प्रयत्न किये थे एवं कौन-कौन सी आपत्तियों एवं कठिनाइयों का सामना—यहाँ तक कि कठैतों के द्वारा प्रता ड़ित करने का समय भी आ गया था—कर भ्रमण संस्कृति को नष्ट होते होते या तो विकृति की व्याप्ति को हटाने के लिए अनेक प्रकार के सुविहित मार्ग प्रकाशक विधि अविधि विषय प्रतिपादक संस्कृत प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा में साहित्य निर्माण कर एवं प्रभु महावीर के शासन के अंग रूप श्रमणों पर जो महान उपकार किये हैं, उनको हम किसी भी अवस्था में नहीं भुला सकते।

समाज और राष्ट्र के सांस्कृतिक स्तर का उत्थान प्रदान करने में महापुरुषों ने महान् आदरणीय प्रयास किये हैं। इनके जीवन का शायद ही कोई क्षण ऐसा हो जो मानव कल्याण के लिए उपयुक्त आवश्यक न हो। क्योंकि जनता के हृदय पर इन त्यागी ऋषि मुनियों का पूर्ण अधिकार रहता है, अतः समाज को जिस सांचे में ढालना चाहें वे आदरणीय महानु भाव ही ढाल सकते हैं। प्राचीन इतिवृत्त में एतद्विषय प्रतिपादक विविध वस्तुएं दृष्टिगोचर होते हैं। प्रश्न होता है कि महापुरुषों का जीवन जिस शताब्दी में यापन हुआ था उस शताब्दी के आचार विचार आज से भिन्न थे तो आज उनके जीवन से हम कौन सी वस्तु ग्रहण कर आत्मिक उन्नति कर सकते हैं? प्रत्युत्तर में केवल हम इतना ही कहना चाहते हैं कि इन महान्

पालन किया और ब्राह्मण क्षत्रियादि को भी अहिंसा का उपदेश दिया।

सम्वत् १२११ में आचार्य श्रीजिनदत्तसूरि का देहान्त हुआ सम्वत् १२४८ में भारत का बहुत बड़ा भाग अपनी स्वाधीनता खो बैठा। यदि आचार्य श्री जिनदत्तसूरि उनके गुरुवर एवं श्रीजिनपतिसूरि आदि जैन संघ को सुदृढ़ सुशिक्षित एवं सुव्यवस्थित न कर देते तो बहुत सम्भव है कि जैन धर्म यवनों के प्रबल राजनैतिक एवं धार्मिक आक्रमण का भोग बन जाता और सामना न कर पाता। प्रारम्भिक मुसलमान शासकों में जैन धर्म का पतन तो हुआ ही नहीं अपितु उसने सर्वतोमुखी वृद्धि भी की यह सब श्री जिनदत्तसूरि आदि महात्माओं के उपदेश का फल था। वे जैन संघ की नींव को दृढ़ कर चुके थे उसको [illegible] करना अब यवन आक्रमणकारों की शक्ति के बाहर का विषय था। भगवान् करें कि ऐसी अनेक विभूतियां उत्पन्न हो कर भारत का फिर कल्याण करें।

श्री अर्बुदतीर्थे
पौष कृष्णा सप्तमी
वि सं० २ १ } दशरथ शर्मा

भूमिका

भारतवर्ष की संस्कृति चिन्तनात्मक विचारधारा पर निर्भर है। इसका उदय भी इन प्राकृतिक सौन्दर्यसम्पन्न गिरि कन्दराओं में निवास करनेवाले परम तपस्वी ऋषि मुनियोंके सतत् आध्यात्मिक मनन में हुआ है। अत भारतीय संस्कृति शुद्ध और आत्म-कल्याणकारिणी है। यों तो संस्कृति मात्र का परम ध्येय मानव का उत्कृष्टतम विकास होना चाहिए पर भारतीय संस्कृति का तो अत्यन्त व्याप्त ध्येय है। मानव जाति के आध्यात्मिक विकास द्वारा मोक्षप्राप्ति। क्योंकि विश्व के समस्त प्राणी अक्षय सुख प्राप्ति के लिए ही भिन्न भिन्न प्रकार के सभी शक्य प्रयत्न बड़ी तत्परता के साथ करते हैं। कहना न होगा कि इस प्रकार का सुख आत्मा के शुद्धतम स्वरूप को पहिचाने बिना कदापि संभव नहीं। इसलिए आध्यात्मिक विकास आवश्यक ही नहीं पर अनिवार्य है। अत भारतीय संस्कृति की जड़ में ही मानव मात्र के लिए कल्याणकारक भावनाओं के निगूढ़तम तत्त्व अंतर्निहित हैं। इसी संस्कृति का विकास न केवल भारत में ही पर अन्यान्य देशों में भी प्रचार के विविध प्रकार के साहित्य—शिलालेख साहित्य एवं पुरातत्त्व

वशाप आज भी उपलब्ध है। जो वर्तमान मानव समाज को पूर्व प्रचलित सांस्कृतिक तत्त्व के सूचक हैं।

जैनों ने भारतीय संस्कृति के प्रचार–विकाश और पुष्टि करने वाले विभिन्न प्रकार के सब श्रेणी के आलोचनात्मक साहित्यिक ग्रन्थ निर्माण कर इस भारत के प्रवाहगत वेग को अमिट उन्नति के लिए नवीनतम विचारोत्तेजक तत्त्वों से आप्लावित किया। इस महान् कार्यों को करने में अधिकतर सहयोग त्याग प्रधान जैन संस्कृति के प्रतीक मुनियों का एवं कतिपय गृहस्थों का योग रहा है।

जैन संस्कृति श्रमण संस्कृति में विभिन्नता नहीं है, इन दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। श्रमण संस्कृति के गौरव को बढ़ाने वाले अनेक ज्योतिर्धर जैनाचार्य पूर्वकाल में हो चुके हैं जिन्होंने न केवल जैन संस्कृति को ही उन्नत किया पर साथ ही साथ भारतीय संस्कृति में जो विकृतियें आ गई थीं उनको दूर करने के लिये भागीरथ प्रयत्न कर शुद्धतम आध्यात्मिक साधनाओं का संरक्षण एवं विकाश किये। उन आचार्यों में आचार्य श्रीहरिभद्रसूरिजी श्रीजिनेश्वरसूरिजी श्रीजिनवल्लभसूरिजी एवं श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज तथा इनके पट्टधर मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरिजी एवं श्रीजिनपतिसूरिजी आदि सुविहित परमत्यागी आचार्य मुख्य हैं। इन सभी का यदि आलोचनात्मक इतिहास तैयार किया जाय तो संसार को विदित हो जायगा कि इन आचार्यों ने श्रमण संस्कृति की रक्षा के

लिए क्रान्तिपूर्ण प्रयत्न किये थे, एवं कौन-कौन सी आपत्तियों एवं कठिनाइयों का सामना-यहाँ तक कि लठैतों के द्वारा प्रता डित करने का समय भी आ गया था—कर श्रमण संस्कृति को नष्ट होते होते या तो विकृति की व्याप्ति को हटाने के लिए अनेक प्रकार के सुविहित मार्ग प्रकाशक विधि अविधि विषय प्रतिपादक स्वतन्त्र प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा में साहित्य निर्माण कर एवं प्रभु महावीर के शासन के अंग रूप श्रमणों पर जो महान् उपकार किये हैं, उनको हम किसी भी अवस्था में नहीं भुला सकते।

समाज और राष्ट्र के सांस्कृतिक स्तर का उत्थान प्रदान करने में महापुरुषों ने महान आदरणीय प्रयास किये हैं। इनके जीवन का शायद ही कोई क्षण ऐसा हो जो मानव कल्याण के लिए उपयुक्त-आवश्यक न हो। क्योंकि जनता के हृदय पर इन त्यागी ऋषि मुनियों का पूर्ण अधिकार रहता है, अतः समाज को जिस सांचे में ढालना चाहें वे आदरणीय महानु भाव ही ढाल सकते हैं। प्राचीन इतिवृत्त में एतद्विषय प्रतिपादक विविध वस्तुएं दृष्टिगोचर होते हैं। प्रश्न होता है कि महापुरुषों का जीवन जिस शताब्दी में व्यापन हुआ था उस शताब्दी के आचार विचार आज से भिन्न थे तो आज उनके जीवन से हम कौन सी वस्तु ग्रहण कर आत्मिक उन्नति कर सकते हैं? प्रत्युत्तर में केवल हम इतना ही कहना चाहते हैं कि इन महान्

आत्माओं के क्रियाकलाप रहन-सहन और इनके द्वारा विर चित साहित्यिक ग्रन्थ मानव मस्तिष्क को आध्यात्मिक तत्वों से परिपुष्ट कर अमित शान्ति के लिये प्रेरित ही नहीं करते पर मानव संस्कृति विकासित उत्तम सिद्धान्तों का परिचायन भी कराते हैं। साथ ही साथ इनका सम्बन्ध उन शताब्दियों से रहते हुए भी उन महात्माओं की जीवनियें आज की अपेक्षा से प्राचीन होते हुए भी नवीनतम भावनाओं की पोषक एवं परि वर्धिका है। अतीत के बिना वर्तमान काल का प्रकाश असं भव नहीं पर कठिन अवश्य है। क्योंकि जो देश अपनी आत्मिक विभूतियों का भुला देता है उसका वास्तविक उत्थान असंदिग्ध है। उस विषयकी पूर्ति के लिए आंशिक-रूपेन श्रीयुत अगरचन्द भंवरलाल नाहटा ने कुछ प्रयास अवश्य किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ उसी प्रयत्न का अंग है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के अध्ययन से विदित होता है कि आचार्य श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज ने अनेक चैत्यवासी आचार्यों को प्रतिबोध देकर सच्चे अर्थों में जैन मुनि दीक्षार्थ दी क्योंकि उस समय में चैत्यवासियों का सार्वभौमिक वर्चस्व था अतः जिस विषय पर हमें बतलाना है उस विषय से सम्बन्धित सभी परिस्थितियों का वास्तविक चित्रण आवश्यक ही नहीं पर ऐतिहासिक चर्चा के लिए तो अत्यन्त अनिवार्य है।

चैत्यवास—

यद्यपि जैन संस्कृति में त्याग का स्थान अत्यन्त उच्च व पवित्र माना गया है। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने ऐसे विकट समय में आत्मोपदेश देना प्रारंभ किया था जब भारत हिंसापूर्ण वातावरण में तल्लीन था। तत्काल में धर्म के नाम पर न जाने क्या क्या अत्याचारों का पोषण उन लोगों द्वारा होता था जो धर्म के ठेकेदार और अनेक विषयों के पारंगत विद्वान् वे अपने को मान बैठे थे। मोक्ष प्राप्ति का उपाय उनकी दृष्टि में केवल यज्ञ ही था जिसमें लाखों मूक प्राणियों को मौत के घाट उतारा जाता था अर्थात् बलि के रूप में यज्ञों में झोंक दिये जाते थे। हमारा मतलब तत्कालीन ब्राह्मण समाज से है जो अपनी आध्यात्मिक संस्कृति को भूल कर केवल भौतिक वाद को ही सर्वस्व समझ रहे थे। उपनिषद् उस समय केवल शुकपाठवत् रटे जाते थे। तात्पर्य निवृत्तिवादका कोई अस्तित्व नहीं था। इसे एक अपेक्षा से वास्तविक ज्ञान प्राप्ति में बाधक एवं मिथ्यान्धकार युग कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। प्रसंगवश हमें स्पष्ट रूप से कहना चाहिये कि बुद्ध-पूर्वकालीन साहित्य ऋग्वेद के सभी मण्डलों में भौतिकवाद का आधिक्य विस्तृत रूपेण वर्णित है। आध्यात्मवाद या आत्म-तत्त्व प्राप्तिका सर्वोत्कृष्ट हमारे अवलोकन में नहीं आया। आध्यात्मवादियों की विचारधारा ही इतनी विशुद्ध और उच्चकोटि के चिन्तन से परिपूर्ण रहती है जिसमें "वसुधैव कुटुम्बकम्" या सर्वजीव

समानता के सिद्धान्तों का स्पष्ट स्फोटन होता है परन्तु मध्यमकाल अन्तर्गत ऋषि-मुनियों की प्रार्थनाओं कोसुनकर केवल मेरा मेरा या ममत्व या अहमाव सूचक विचारधारा का असंख्य प्रवाह प्रवाहित हुआ है। संभव है भगवान् महावीर के समय में उस प्रवाह का ही ब्राह्मण समाज में पर्याप्त प्रचार रहा हो आश्चर्य नहीं कि इस विचारधारा को लेकर ही भौतिकवाद के परि पोषणार्थ उपरोक्त कार्य हों। उन ब्राह्मणों की हिंसात्मक चित्त वृत्ति को अहिंसा में परिवर्तित कर दी। लोकमान्य तिलक के शब्दों में कहा जाय तो वर्तमान ब्राह्मण समाज पर जो अहिंसा की छाप है वह जैनधर्म की अहिंसा के कारण ही। प्रभु महावीर ने कतिपय ब्राह्मणों को मुनिधर्म की दीक्षाएं देकर त्याग प्रधान संस्कृति में प्रविष्ट कराया।

भगवान् महावीर के समय में जैन मुनियों का आचार विचार संसार के लिये एक महान् आदर्श था जो सत्य और अहिंसा पर निर्भर था। परन्तु संसार परिवर्तनशील है। सच कहा जाय तो परिवर्तनशीलता ही विश्व का चिरस्थायी सिद्धान्त है। आज विश्व में कोई भी ऐसा धर्म दृष्टिगोचर नहीं जो जिस समय जिन आदर्शों को लेकर अवतरित हुआ हो आज तक वे आदर्श उस धर्म में यथास्थित रूपेण विद्यमान हों अर्थात् उन आदर्शों में विकृति न आई हो। पर कहना पड़ रहा है कि संसार में शायद ही कोई धर्म ऐसा होगा जिस में समय पाकर प्रकृति से सामाजिक विचारों से या ऐसे ही

अन्य कारणों से विभिन्न संप्रदायों की सृष्टि न हुई हो।
धर्म भी इस नियम का अपवाद कैसे हो सकता था।

धर्म से जो संप्रदाय अलग निर्मित होता है वह पुरातन
एवं अनुधावन करनेवाला होने पर भी कुछ न कुछ नूतनत्व
लिए ही रहता है। इस नूतनत्व को ही उस संप्रदाय के
मान साहित्यिक रूप देकर आदर्श रूप से अंगीकार करता
वर्षों के बाद शुद्धतम धर्म के रूप में संप्रदाय परिवर्तित
जाते हैं। इस समय लाभ हानि का विचार बहुत कम
ता है। चैत्यवास भी इसी विचार प्रसूत कल्पनाओं का
हरा रूप है।

चैत्यवास की प्रारंभिक अवस्था का सूचित करने वाले
कान्य प्रमाण अन्धकार में है। कल्पप्रिय धर्मसागर जी ने
वीरात् ८८२ चैत्यस्थिति" उल्लेख किया है। आचार्य श्री
जनवल्लभसूरिजी कृत संघपट्टककी भूमिका में वीर निर्वाण
८ का उल्लेख है पर ये उल्लेख एतिहासिक दृष्टि का गवेषणा
बाद खास मूल्य नहीं रखते। क्योंकि इन उल्लेखों के पूर्व
ी चैत्यवास की प्रसिद्धि सार्वत्रिक हो चुकी थी। वज्रस्वामी
समय में चैत्यवास का आभास मिलता है, विक्रम की प्रथम
ताब्दी में आचार्य पादलिप्तसूरिजी के समय में चैत्यवास का
स्पष्ट रूप से उल्लेख मिलता है। तत्पश्चात् अठ्ठोंशताब्दी तक इस
की क्या स्थिति रही जानने के साधन नहीं। आचार्य श्रीहरिभद्र

सूरि जी के समय में चैत्यवासियों का सूर्यमध्याह्न में था जैसा कि आप के सम्बोधप्रकरणमें इन लोगोंपर किये गये भयंकर शाब्दिक प्रहारों से सूचित होता है —

ये कुसाधु चैत्यों और मठों में रहते हैं पूजा करने का आरम्भ करते हैं देव द्रव्य का उपभोग करते हैं जिन मन्दिर और शालायें चिनवाते हैं रङ्ग बिरंगे सुगन्धित धूपवासित वस्त्र पहिनते हैं बिना नाथ के बैलों के सदृश स्त्रियों के आगे गाते हैं आर्यिकाओं द्वारा लाये गये पदार्थ खाते हैं और तरह तरह के उपकरण रखते हैं। जल फल फूल आदि सचित्त द्रव्यों का उपभोग करते हैं दो तीन बार भोजन करते और ताम्बूल लवंगादि भी खाते हैं।

ये मुहूर्त निकालते हैं निमित्त बतलाते हैं भभूत भी देते हैं। ज्योनारों में मिष्ट आहार प्राप्त करते हैं आहार के लिये खुशामद करते और पूछने पर भी सत्य धर्म नहीं बतलाते।

स्वयं भ्रष्ट होते हुवे भी दूसरों से आलोचना प्रतिक्रमण कराते हैं। स्नान करते तेल लगाते श्रृंगार करते और इत्र फुलेल का उपभोग करते हैं।

अपने हीनाचारी मृतक गुरुओं की दाह भूमिपर स्तूप बनवाते हैं। स्त्रियों के समक्ष व्याख्यान देते हैं और स्त्रियां उनके गुणों के गीत गाती हैं।

स्व. पूज्य आनन्दविमलसूरि, गणिवर सत्यविजय पन्यास, उपाध्याय क्षमाकल्याणजी सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक श्रीमद् देवचन्द्रजी, श्री शिवजीरामजी श्रीयुत मोहनलालजी पार्श्वचन्द्रगच्छीय श्री भातृचन्द्रजी, Jain Encycopaepia, जैसे अत्यन्त महत्व पूर्ण ग्रन्थ के रचयिता श्री राजेन्द्र सूरि और इन पंक्तियों के लेखक के दादा गुरु प्रातः स्मरणीय श्री जिनकृपाचन्द्र सूरिजी महाराज जैसे दिग्गज विद्वानों ने अपनी प्रमाद जन्य प्रवृत्ति के रहस्यको पहचान कर शिथिलाचार का सर्वथा त्याग कर वास्तविक कल्याणकर मुनि धर्म अंगीकार कर अवशिष्ट सज्जनों के लिये एक नवीन आत्मकल्याणकर आदर्श उपस्थित किया है। इन पूज्य पुरुषों के चरण कमलों में हमारे कोटिशः वन्दन हों।

गुजरात की प्रसिद्ध राजधानी अणहिलपुर पाटण के बसाने वाले चापोत्कट वनराज (वि० सं० ८०२) के गुरु शीलगुण सूरि चैत्यवासी थे। अतः वनराज ने आज्ञा निकाल रक्खी थी कि मेरे राज्य में चैत्यवासी मुनियों को छोड़कर अन्य सुविहित मुनि ठहर नहीं सकते*। इस प्रकार पश्चिम भारत में चैत्यवास का बोल बाला था।

---

* चैत्यगच्छ यतिव्रात सम्मतो वसताम् मुनिः।
नगरे मुनिभिर्नात्र वस्तव्यं तदसम्मतैः ॥१८९॥

[प्रभावक चरित्र सिंघीसिरीज पृ० १६३]

शोधकर भगवान प्रणीत आगमों पर वृत्ति निर्माण करने में ही लगा दिया। यदि यह कार्य न हुआ होता तो आज इन आगमों के मूलगत रहस्य को समझने वालों की संख्या संभव बस अंगुली पर गिनने लायक भी न रहती। इनके पट्टपर आचार्य श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराज हुए। यद्यपि आपके जन्मादि काल सूचक ऐतिहासिक संवत् अनुपलब्ध है परन्तु आपके धार्मिक एवं साहित्यिक कार्य बहुत उच्चकोटि के थे जिनका वर्णन मर्मिनी की शक्ति से बाहर का विषय है। आपकी वस्तुतः कला में जो महान् गति थी वह तत्कालिक जैन ज्योतिषियों में शायद ही पायी गई हो। आपने अपनी क्रान्तिपूर्ण विचारधारा का अक्षुण्ण प्रवाह बहा कर चैत्यवासियों के विरुद्ध विशद आन्दोलन चलाया था। एतद्विषयक संघ पट्टकादि ग्रन्थों का भी निर्माण कर निवृत्तिमय-त्यागपूर्ण जैन श्रमण संस्कृति को सुरक्षित रखा। इन कार्यों में आपने ऐसी सहिष्णुता का परिचय दिया जो एक आदर्श युग प्रवर्तक महापुरुष को शोभा देता हो।

मानव संस्कृति का उत्थान पतन अवलम्बित है उस देशके विचारशील क्रान्तदर्शी प्रतिभासम्पन्न कवियों पर। कविता में ही ऐसी अद्भुत शक्तियाँ अन्तर्निहित हैं जो मृतप्राय मानवमें भी जीवन डाल सकती है क्योंकि कविताका सीधा सम्बन्ध है मानव हृदयके साथ। कवित्व ही की शक्तिके बलपर महाने योग्य कार्य भी हुए हैं जिनकी विवेचना यहाँपर अभीष्ट

नहीं। आचार्य श्री जिनवल्लभसूरिजी महाराजके समयके साहित्याकाशको सूक्ष्मतम दृष्टिसे अवलोकन करनेसे विदित होता है कि मानव हृदयमें सुधाका संचार करनेवाली हृदयग्राहिणी कवितायोंका विशेष महत्त्व था। जिनवल्लभसूरिजी महाराजने कविता निर्माण-कलामें जो सफलता प्राप्त की थी वह वर्त्त दृष्टियों से महत्वपूर्ण होनेके साथ मनोरंजक भी है। आपकी कवितायोंमें शब्दचयनशक्ति, सौन्दर्य माधुर्य, विषय प्रतिपादन शैली शाब्दिक अलङ्कार, विविध भाषा एवं छन्द, चमर वृन्द, कमल आदि चित्रालङ्कार गुंफन प्रतिभा अलौकिक थी। संसारमें कवि बनाये नहीं जाते पर स्वाभाविक रूपेण उत्पन्न होते हैं। आप परमाह्लादक सोम्यों आना चरितार्थ होती है कवित्वको पूर्व जीवन गत संस्कारकी देन कहें तो अनुचित न होगा। आपकी कविता ओंमें एक और महत्वपूर्ण विशेषताका अनुभव होता है जो अन्यत्र शायद ही उपलब्ध हो। वह यह कि प्राकृत भाषा द्वारा संस्कृतके प्रसिद्ध छन्दोंमें शब्द रचना एवं अस्खलित प्रवाह। प्राकृत भाषापर तो आपका पूर्णाधिकार था ही, पर संस्कृत भाषामें भी आपने जो विद्वत्ता एवं कलापूर्ण साहित्य निर्माण किया है वह आज भी सस्कृ भाषाविदोंको आश्चर्यान्वित किये बिना नहीं रहता। तत्कालिक प्राकृत भाषाका वैज्ञानिक अध्ययन तब तक अपूर्ण रहेगा जब तक आपके सम्पूर्ण साहित्यका समुचित परिशीलन न किया जाय। मालव नरेश नरवर्मा को आपने अपने कवित्व समस्यापूर्तिके बलसे प्रभावित कर चित्तोड़ के विधि चैत्यालयके लिए आर्थिक साहाय्य प्रदान करवाया था।

आपके समयमें जैनसमाजका मानसिक चिन्तन बहुत उच्च श्रेणि का था। अत तत्कालिक जैन साहित्यमें चिन्तनशीलताका व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। जैन गृहस्थ भी उस समय संस्कृत प्राकृत एवं तत्कालीन लोक भाषाओंमें आत्मसम्बन्धी जैन संस्कृति के उत्तमतत्त्वोंका प्रवाह बहाते थे। श्रीजिनवल्लभसूरिजी का अनुयायी गृहस्थसमुदायभीग्रन्थकार था। नागौरके श्रेष्ठि पद्मानन्दने वैराग्य शतक नामक ग्रन्थ की रचना की। तत्कालिक जैन धर्मके ज्योतिष पर भी अपने विषयके पूर्ण निष्णात थे। सामाजिक विकाश भी पर्याप्त उन्नत था जैसा कि तत्कालीन कुछ सांस्कृतिकग्रन्थोंसे विदित होता है। यदि इन ग्रन्थोंका वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाय तो निस्संदेह भारतीय संस्कृतिके गौरव को बढ़ानेवाले विविध नूतन सामाजिक तत्त्व प्रकाशमें आ सकते हैं*। इन तत्त्वोंसे मालूम होगा कि उस

---

* भारतवर्ष के सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास की बहुत सी मौलिक सामग्री जैन आगमों एवं तद् परवर्ती साहित्य के अनेक ग्रन्थों में पाई जाती है यहां तक कि कई ग्रन्थ तो स्वतन्त्र उन्हीं विषयों पर ही विशद विवेचन उपस्थित करते हैं। विक्रम पूर्व से लगाकर आजतक भारतवर्ष की भिन्न-भिन्न समय पर उत्पन्न होने वाली सामाजिक समस्याओं का जिन्हें व्यवस्थात्मक अध्ययन करना हो उन विद्वान् गवेषियों को चाहिये कि वे प्रत्येक शताब्दी के विभिन्न प्रान्तीय एवं भाषीय जैन ग्रन्थों का अवश्य ही तलस्पर्शी अध्ययन—मनन करें।

हमें इस बात का सदैव परिताप रहा है कि जैनों की इतनी विशाल वाङ्मयिक सम्पत्ती होते हुए भी एक दृष्टि से वे इससे वञ्चित से रह जाते हैं। इस युग में भी यदि साहित्यिक और ऐतिहासिक गवेषणा करने-कराने में जैनी पश्चात् पद रहे तो फिर उत्थान की कामना असफल प्रमाणित होगा।

आपके समयमें जैनसमाजका मानसिक चिन्तन बहुत कम क्षेत्रिक था। अतः तत्कालिक जैन साहित्यमें चिन्तनशीलताका व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। जैन गृहस्थ भी उस समय संस्कृत, प्राकृत एवं तत्कालीन लोक भाषाओंमें आत्मलक्षी जैन संस्कृति के उच्चतत्त्वोंका प्रवाह बहाते थे। श्रीजिनवल्लभसूरिजी का अनुयायी गृहस्थ समुदायभी ग्रन्थकार था। नागौरके श्रेष्ठि पद्मानन्दने वैराग्य शतक नामक ग्रन्थ की रचना की। तत्कालिक जैन धर्मके ज्योतिषेर भी अपने विषयके पूर्ण निष्णात थे। सामाजिक विकासभी पर्याप्त उन्नत था जैसा कि तत्कालीन कुछ सांस्कृतिक ग्रन्थोंसे विदित होता है। यदि इन ग्रन्थोंका वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाय तो निस्संदेह भारतीय संस्कृतिके गौरव को बढ़ानेवाले विविध नूतन सामाजिक तत्त्व प्रकाशमें आ सकते हैं*। इन तत्त्वोंसे मालूम होगा कि उस

* भारतवर्ष के सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास की बहुत सी मौलिक सामग्री जैन आगमों एवं तद् परवर्ती साहित्य के अनेकों ग्रन्थों में पड़ी हुई है यहां तक कि कई ग्रन्थ तो सतत उपयुक्त विषयों का ही विशद विवेचन उपस्थित करते हैं। विषय पूर्व से लगाकर आजतक भारतवर्ष की भिन्न-भिन्न समय पर उत्पन्न होने वाली सामाजिक समस्याओं का जिन्हें यथोचितरूप अध्ययन करना हो उन विद्वान् मनीषियों को चाहिये कि वे प्रत्येक शताब्दी के विभिन्न प्रान्तीय एवं भाषीय जैन ग्रन्थों का अवश्य ही तलस्पर्शी अध्ययन—मनन करें।

हमें इस बात का सदैव परिताप रहा है कि जैनों की इतनी विशाल साहित्यिक सम्पत्ति होते हुए भी एक दृष्टि से वे इससे वंचित से रह जाते हैं। इस युग में भी यदि साहित्यिक और ऐतिहासिक गवेषणा करने-कराने में जैनी पश्चात् पद रहे तो फिर उत्थान की कामना असम्भव प्राय होगा।

समय कौन से सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्थाके नियम ऐसे थे जिनके प्रचारका क्षेत्र न केवल गुजरात ही पर सम्पूर्ण भारतवर्ष था। तत्कालीन साहित्यसे यह भी माना जा सकता है कि अराजक रिवाज राजनैतिक स्थितिमें आंशिक रूपेण विद्यमान थे। उदाहरण के लिए "तवलेकी बला बन्दरके सर" कहना न होगा कि उस समय राजकीय अश्वशालाओंमें बन्दर इसी लिए बांधे जाते थे कि अश्वोंपर दृष्टिदोष न लगने पावे। इसमें वैज्ञानिक तत्व कितना है हम नहीं कह सकते क्योंकि वह युग अन्धश्रद्धावाद और मान्त्रिक चमत्कारों में विश्वास करनेवालों का था। आज भी मध्यप्रान्तमें छत्तीसगढ़ डिविजन एवं उड़ीसाके कुछ विभागोंमें हमने प्रत्यक्ष अनुभव किया है कि वहांके सामाजिक कार्य संचालनमें और कुटुम्ब परिचालनमें भी मंत्रवादका सहारा अधिक लिया जाता है। वैद्यों और डाक्टरों की आवश्यकताका अनुभव उपर्युक्त प्रान्तीय कुछ विभागोंमें नहीं।

तत्कालीन राजनैतिक स्थिति—

जिस समय युगप्रवर यानी चरित्रनायक भारतवर्षमें अवतीर्ण हुए थे उस समयका राजनैतिक वातावरण जानना आवश्यक है। श्रीजिनदत्तसूरिजीने ईस्वी सन् १०७५ से ११५४ (वि० सं० ११३२ से १२११) तकके मध्य भागको सार्थक किया था। इसी समयके बीचमें काश्मीरमें ईस्वी सन् १०६२ से ११५० तक क्रमशः, हर्ष और जयसिंह नामक तीन राजा हुए। जयसिंहके राजत्वकालमें इनकी राजसभाके मान्य पण्डित राजानक रुय्यक ने "अलङ्कार सर्वस्व" नामक उपादेयग्रन्थ निर्माण किया। कन्नौजमें राठौरवंशीय

राजाओंका प्रमुख था। चरित्रनायकके समकालीन गोविन्द्रचन्द्र ई सन् ११०४ से ११५५ तक पाञ्चालके राजा थे। नैषधकाव्यतथा खण्डन खण्ड खाद्य जैसे उत्कृष्ट वेदान्त ग्रन्थके प्रणेता श्रीहर्ष इन्हींकि सभापति माने जाते थे। जयचन्द्र-संयोगिताके पिता इनके पौत्र थे, पृथ्वीराज चौहानके साथ इस जयचन्द्रके वैमनस्यके कारण भारत वर्षको विदेशी शासकका कटु अनुभव आजतक करना पड़ रहा है नहीं कहा जा सकता भविष्यमें भी कब तकसे सहना पड़े। यदि यहांके गोरे शासक अपने वादेके अनुसार चले जाय तो तब तो कोई बात नहीं। बुन्देल खण्डमें चन्देल राजा कीर्तिवर्मनि सन् १०४९ से ११ तक राज्य किया। इस समय तत्समीपवर्ती त्रिपुरीमें कलचुरि नरेश कर्णका साम्राज्य था। इनके अन्तिम समयमें श्रीजिनदत्त सूरि २५ वर्षके रहे होंगे। इन्हींकि समय श्रीकृष्ण मिश्रनं प्रबोध चन्द्रोदय नाटक लिखा और सन् १ ६५ में कीर्तिवर्मकि राज-दरबारमें इसका अभिनय हुआ। बङ्गाल और बिहारमें पालवंशीय राजा रामपाल बड़े प्रतापी थे। सन् १०८४ से ११३० तक इन्होंने राज्य किया। सन् १०८४ में ही सोमचन्द्रको दीक्षा दी गयी थी। राजा रामपालकी मृत्युके समय श्रीजिनदत्तसूरिजी ५४ वर्षके रहे होंगे। इस कालमें मगध प्रान्तमें बौद्धोंका प्राधान्य था।

पाल वंशीय राजाओंकी सीमाके भीतर ही एक भाग पर अधिकार करके सामन्तदेवके पौत्र तथा हेमन्तसेनके पुत्र विजय सेनने सैन वंशका साम्राज्य स्थापित किया। सामन्तदेव दक्षिणसे

आये हुए थे तथा मयूरभंज रियासतके कसियारमें पिता-पुत्रने एक छोटा-सा राज्य स्थापित किया था। सन् ११०८ के पूर्व ४२ वर्षतक विजयसेनने राज्य किया। इस समय श्रीजिनदत्तसूरिजी ३३ वर्षके रहे होंगे। सन् ११ ८ के आस-पास विजयसेनके पुत्र बल्लालसेन ने शासनकी बागडोर अपने हाथमें ली। नवद्वीप (नदिया) के विद्यापीठका शिलान्यास इन्होंने ही किया था। शैव वंशीय राजा ब्राह्मण थे। अतः इन्होंने वर्णाश्रम धर्मकी सुदृढ़ स्थापना बङ्गालमें की। सन् १११९ में इनके पुत्र लक्ष्मणसेन गद्दीपर आये और इन्होंने ८० वर्षतक राज्य किया। इनके राजत्वकालमें प्रथम १२ वर्षोंमें चरित्रनायक राजपूतानामें धर्म प्रचार कर रहे थे। गीत गोविन्दकार महाकवि जयदेव इनकी सभाके पंचरत्नोंमें थे। लक्ष्मण

---

१ कृष्णभक्ति रसात्मक संस्कृत भाषाके गीतिकाव्योंमें गीतगोविन्दका स्थान अत्यन्त उच्च श्रेणिका माना जाता है। बादमें इसीके मान हिन्दी गुजराती बंगला मराठी एवं तामिल भाषाओंमें प्रकाशित हुए। परन्तु संस्कृत भाषा में एतद्विषयक विस्तृत ग्रन्थका सर्वथा अभाव था जो हमारे अवलोकनमें नहीं आया। यद्यपि वर्षों से वैराग्यरस पोषक और आत्मतत्त्व समर्थक कुछ ग्रन्थ संस्कृत भाषामें अवश्य ही निर्माण किये हैं। जिन्हें पढ़ने से अपूर्व आत्मिक आनन्दका अनुभव होता है और साथ ही साथ मन भी असत्कर्म परसे प्रशस्त मार्गकी ओर अग्रसर होनेकी भावनासे वैसी प्रकृति को प्रोत्साहित करता है। छत्तीसगढ़ प्रान्त में रायपुर के बाबू रेवारामजी श्रीवास्तवने विक्रम संवत् १९११ में गीतमाधव महाकाव्य नामक कृष्णभक्ति विषयक निर्माण

सेनका दरबार भागीरथीके तटपर नवद्वीपमें लगता था। भारतीय न्याय शास्त्रके पारङ्गत विद्वानोंमें रघुनाथ शिरोमणि ऊँचा स्थान रखते थे, वे और गौरांग महाप्रभु यहींके विद्वान और धर्म प्रचारक थे।

श्रीजिनदत्तसूरिजीके समयमें दक्षिण भारतमें कल्याणी चालुक्य वंशका राज्य था। निजाम राज्यके गुलबर्गाके पास कल्याण नामक शहर इसी वंशकी राजधानी थी। आचार्य श्री के जन्मके १ वर्ष पश्चात् १०७६ में कल्याणी चालुक्य विक्रमाङ्क (विक्रमादित्य षष्ठ) सिंहासनारूढ़ हुए व सन् ११२७ तक राज्य करते रहे। इस समय श्रीजिनदत्तसूरिजीकी अवस्था ५२ वर्ष की थी। विक्रमाङ्कके पुत्र सोमेश्वर तृतीय सन् ११२७ से ११३८ तक राज्य करते रहे जब सूरिजी ६३ वर्षके थे।

श्रीजिनदत्तसूरिजीके एक वर्ष पूर्व ही सन् १०७४ में दक्षिणमें चोल वंशीय राजाओंमें अन्तिम राजा अधिराजेन्द्रके समय तक विशिष्टाद्वैत मतके प्रवर्त्तक रामानुजाचार्य इस शैव राजाके साथ मैसूरमें ही रहे। इसके बाद अन्यत्र चले गये।

इसी समय मैसूरके होयसल वंशीय राजा जैन धर्मके आश्रय दाता थे। प्रथम नरेश विट्टिदेवने सन् ११११ से ११४१ तक राज्य किया। यह समय श्रीजिनदत्तसूरिजीके ३६ वें वर्षसे ६६ व वर्ष तकका है। इनके मन्त्री गंगराजने जैन धर्मको आश्रय दिया।

गिरायें गठित किया, इसमें भैरव रामकली मालकोष, केदार, सारंग आदि आदि राग सम्मिलित हैं। रचना सरल एवं ओजपूर्ण है।

श्रीजिनदत्तसूरिजीके समकालमें कलिङ्गके पूर्व गंगराजाओंमें से अनन्तवर्मा राज्य करते थे। इनका राजत्वकाल १०७४ से ११४७ तकका है। सूरिजीके द्वितीय वर्षसे ७२ वें वर्षतक अनन्तवर्मा राज्य करते रहे। उड़ीसाका सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक मन्दिर इन्हींके समयका बनवाया हुआ है। श्रीजिनदत्तसूरिजीके समकाल जगन्नाथके मन्दिरका समय भी स्पष्ट है। इसके उपरान्त श्रीजिनदत्तसूरिजीकी जन्मभूमि तथा कर्मक्षेत्र गुजरातके समकालीन वातावरण पर भी ध्यान देना आवश्यक होगा। वैसे तो विहार क्रमसे सूरिजी गुजरात युक्तप्रान्त मारवाड़में विचरे थे।

गुजरातमें विक्रमकी सप्तम शताब्दीसे ही चावड़ोंका शासन था। पर आठवीं शताब्दीमें सिन्धके अरब सरदारोंके आक्रमणसे इस वंशकी शक्ति क्षीणप्राय हो गयी थी। १ वीं शताब्दीके अंतमें सन् ६६१ से १२ वीं शतीके अन्त भाग सन् ११४२ तक अणहिलवाड़पाटण में चालुक्य वंशीय राजाओंने शासन किया। चालुक्यवंशी प्राय सभी नरेश जैनधर्म को सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे। साथ ही साथ प्रभावके सभी साधन राजाओंने सुलभ कर दिये थे। श्रीजिनदत्तसूरिजीके समयमें राजा कर्ण (राज्यकाल १ ६४ से १ ६४ तक) राज्य करते थे सन् १ ६४में आचार्य श्री की अवस्था १६ वर्षकी थी। इस समय इन्हें सोमचन्द्र नाम से

१ इसकी पुष्टी पर द्वितीय (अजमुरी) ने युद्धमें पराजय किया था जैसा कि रामपुरसे हमें प्राप्त ताम्रपत्रसे ज्ञात होता है 'विशालभारत' फरवरी १९४०

विभूषित हुए १० वर्ष हो चुके थे। सिद्धराज जयसिंह एवं महाराज परमार्हत कुमारपाल आचार्य महाराजके उत्कर्ष काल में राज्य शासन करते थे। जयसिंहकी सभामें श्वेताम्बर जैनाचार्य वादि देवसूरि और कर्णाटकके दिगम्बर जैनाचार्य कुमुदचंद्रजी का सफल शास्त्रार्थ हुआ था। इस महत्त्वपूर्ण शास्त्रार्थ के उस समय के बने हुए चित्र भी जैसलमेर के ज्ञान भंडार में पाये गये हैं जो "भारतीय विद्या" तृतीय भाग में प्रकाशित हुए हैं। सिद्धराज जयसिंहका शासन काल १०८४ से ११४२ तक था। कुमारपाल ५० वर्षकी अवस्थामें सम् ११४३ से ११७४ तक राजगद्दी पर विराजित थ। इनके प्रधान परिपोषक, उपदेशक आचार्य श्री हेम चन्द्रसूरि थे। इन कुमारपाल के अस्तित्व समयमें आचार्य महाराजका अवसान हुआ। इस समय जैनोंका राजनैतिक जीवन अत्यन्त उत्कर्षकोटिका था भारतवर्षमें उन्नतिकी लहर दौड़ रही थी।

साहित्यिक स्थिति

आचार्य श्री जिनदत्त सूरि के समयमें गुजरात पर चौलुक्योंका आधिपत्य था। उनकी राजसभा के पंडितों और उच्च राजकर्मचारियोंमें जैनोंकी प्रामुख्यता थी। श्री और सरस्वतीका अद्भुत समन्वयथा।

यह देखा गया है कि प्रत्येक देशके साहित्यिक विकासमें उसकी राजनैतिक स्थिति भी बहुत कुछ अंशोंमें सहायक होती है। उन दिनों राजकीय वायुमंडल अत्यन्त स्वच्छ था। वे स्वयं भी अपनी

क्षुद्र स्वार्थप्रनितवासनाकी पूर्तिके लिये जनता को अनुचित ढंगसे रक्तशोषणकी भीषण यंत्रणादायक मशीनमें पीसनेके अभ्यस्त नहीं थे पर प्रजाके सुख दु:खोंमें सहानुभूति रखनेवाले थे।

जैनों ने मानसिक विकासमें कभी भी पीछे पैर नहीं रखा। समय-समय पर अपनी अनुभूतियों को लिपिबद्ध कर, जनता को विचारनेकी प्रयाप्त सामग्री दी है। जैन साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि किसी भी धर्म या सम्प्रदायका अनुयायी या किसी भाषा का भाषी क्यों न हो ? वह अपनी ऐच्छिक तृषा शान्तकर अपूर्व आनन्दका अनुभव कर सकता है। दीर्घदर्शी जैनाचार्योंने भारतकी विभिन्न भाषाओंमें अपने विचार गुम्फित किये हैं। जिनके अध्ययन-मननसे संसारका प्रत्येक मानव आत्मिक विकासके उत्तम आदर्शोंको प्राप्त कर सकता है।

गुजरातकी तत्कालिक साहित्यिक स्थितिका दिग्दर्शन यहां पर विवक्षित है। उन दिनों वहां विद्वानोंका जमघट था। राजाओंकी ओरसे उनका उचित सन्मान होता था। इतर प्रान्तीय विद्वान गुजरातके सरस्वती पुत्रोंकी कीर्ति को सुनकर वहां जाकर योग्यतानुसार उचित सन्मान एवं पुरस्कार प्राप्त करने में अपने को गौरवान्वित समझते थे। सरस्वतीकी सेवा करनेका सौभाग्य जैनाचार्यों एवं तत्कालीन गृहस्थों को प्राप्त था। जैनमुनियोंने उनकी अभ्यर्थनाको मान देकर उनके गृहोंमें रहकर, विविध विषय प्रतिपादक ग्रन्थ निर्माण कर सरस्वतीके मंदिरमें भेंट चढ़ाये।

कहना अनावश्यक न होगा कि उस युगका जैन गृहस्थ सिर्फ कलम पर ही अधिकार न रखताथा। परन्तु आवश्यकता पड़ने पर तलवारसे भी एक वीर योद्धिककी भांति रणक्षेत्रमें क्रीड़ा करना जानता था।

इस समयकी साहित्य सरिताके प्रवाह को प्रवाहित करने वाले अपने वर्योके ज्ञान और तपोबलसे मानव कल्याणकी कामना करने वाले एवं भारतीय मस्तिष्कके सर्वोत्तम विचारात्मक भावों तथा विविध भाषा विभाषाओंकी रक्षा करने वाले उत्कृष्ट मुनि पुङ्गवोंमें आचार्य श्री नवाङ्गवृत्तिकार श्रीमद् अभयदेवसूरि मानमियचंद्रसूरि श्रीचन्द्रसूरि मलधारिअभयदेव और मलयगिरिसूरि (ये आचार्य प्रकाण्ड पंडित अद्भुत दार्शनिक और समर्थ आलोचक थे) आचार्य श्रीजिनवल्लभसूरिजी स्वामीके विरुद्ध अहिंसात्मक आन्दोलन चलानेके सौभाग्यसे मंडित हैं वीराचार्य गुणचंद्र (बृहत्तर महावीर जीवनके रचयिता) देवभद्रसूरि (प्रसिद्धगद्यपोश तथा जैनकथा साहित्य तथा प्राकृतभाषा के समर्थ विद्वान एवं विवेचक) आचार्य श्री वर्धमानसूरि द्वितीय वादिदेवसूरि जो अनेकों इतर प्रान्तके पण्डितों को राजसभामें अपनी प्रकाण्ड विद्वत्ता एवं तर्क युक्त दलीलोंके बल पर वादमें पराजित करनेकी अपूर्व क्षमता रखते थे। दार्शनिक साहित्यमें आपकी गति महान् थी। — हमने आपके स्याद्वाद रत्नाकर" का अध्ययन किया है जिसकी बड़ी खूबी यह है कि पूर्व पक्षकी युक्तियें आपने ऐसी दी हैं मालूम होता है

बाग इनका समझन ही असम्भव है, परन्तु जब उनका लगाव मारम्भ होता है तब तो बड़े-बड़े दार्शनिक चकाचौंध हो जाते हैं। मध्यप्रान्तके प्रमुख दार्शनिक दर्शन केसरी पंडित लोकनाथजी शास्त्री (जिनके समीप हमने भी न्याय शास्त्रका अध्ययन किया है) ने यहां तक कहा डाला था कि "ऐसा सुमहत्तम प्रतिभा सम्पन्न विद्वान हमारे यहां आजतक कोई नहीं हुआ"। देवचंद्रसूरि हेमचन्द्रसूरि यशोदेवसूरि आदि अनेक आचार्य एवं मुनिवर्यों ने साहित्यकी न्याय (न्यायशास्त्र के विकासका यह युग मध्यान्हकाल माना जाता है) दर्शन व्याकरण भूगोल पटदर्शन इतिहास काव्य, नाटक, अलंकार आदि विभिन्न विषयों पर संस्कृत प्राकृत और तत्कालीन लोकभाषामें निर्माण कर एवं अतीत विद्वानोंकी कृतियों पर विस्तृत वृत्तियें रचकर और जनके ग्रन्थोंको प्रतिलिपियें कर जैन भंडारोंमें सुरक्षित रखे हैं।

इस समयके सद्गृहस्थों ने साहित्य विकासमें मूल्यवान सहायतायें प्रदान की थी जो राज्यके अति उच्च उत्तरदायित्व पूर्ण पदों पर विराजित थे जिनमें चक्रमाबायकवर्ती श्रीपाल और उसका पुत्र सिद्धपाल मुख्य है। श्रीपाल प्रज्ञाचक्षु होते हुए भी बड़े-बड़े प्रभाव वादियों को परास्त करने की क्षमता रखते थे। कार्योंकी बाहुल्यता रहते हुए भी गृहस्थोंका साहित्य प्रेम अवश्य अभिनन्दनीय और वर्तमान गृहस्थोंके लिये अनुकरणीय है।

उपर्युक्त आचार्यों एवं गृहस्थों ने जो कुछ भी साहित्य निर्माण किया है वह आज भी समस्त संसारके विद्वान एवं गवेषियों को

ात्वर्यान्वित किये बिना नहीं रहता, हमें खेद है कि स्थान एवं समयाभावसे इस कालके जैन जैनतर साहित्य पर प्रकाश नहीं ाल सकते।

सूरिजी-कालीन अपभ्रंश साहित्य—

भारतीय भाषातत्त्व विशारद भलि भाँति जानते हैं कि भगवान् महावीर और गौतम बुद्ध आदि ऋषि-मुनियोंने अपने मौपदेशिक क्षेत्रक लिये—तत्कालमें प्रचलित लोकभाषा को माध्यम बनाया था तदनंतर जहां-जहां जैन महात्मा मुनि विचरण करते हुए पहुंचते उन्हें वहां पर अपनी—परकल्याणकारक मौपदेशिक—वाणी को लोकभाषा द्वारा ही जनताके सम्मुख उपस्थित तथा उस प्रान्तके लोगोंकी मानसिक योग्यतानुसार उनके मस्तिष्क में विचारत्तेजक भावनाओं को चिरस्थायी बनाने के लिये साहित्य सृजन भी लोकगम्य भाषामें ही करते थे। उनका उद्देश्य अपनी प्रकाण्ड विद्वत्ताका परिचय देनेका न था पर मानव मात्र आत्मिक कल्याण—आध्यात्मिक लाभ कैसे प्राप्त करें यह था। पर आज उनकी रचनाएं हमें भाषाविज्ञानकी दृष्टि से अद्भुत मालूम होती हैं। हमारा सुनिश्चित मत रहा है कि जब तक इन लोकभाषामय ग्रन्थोंका तलस्पर्शी अध्ययन नहीं किया जायगा तब तक भारतीय भाषाविज्ञानके मूलगत रहस्य शब्द व्युत्पत्ति रूप आदिको समझना बड़ा कठिन हो जायगा। प्रस्तुत चरितनायक कालीन साहित्यिक स्थिति को देखने से अपभ्रंश को उपेक्षा कैसे की जा सकती है जो आधुनिक भाषाओंकि जननी है।

अपभ्रंश प्राकृतभाषा का ही एक अंग है। प्राचीन जैनागम आचारांगसूत्र और पतञ्जलि कृत महाभाष्य में इस भाषा के कुछ शब्दों का पता लगता है। कोई भाषा हो जब उसमें साहित्यिक रचना प्रारम्भ होने लगती है तब उसे क्रमशः व्याकरण के नियमों में जकड़ देते हैं। ठीक वैसा ही हाल अपभ्रंश का रहा। कालीदास के समय में तो इसका प्रचार-प्रसार सामान्य था। पर बाद में इतना बढ़ गया कि अच्छे-अच्छे विद्वान् इस में रचना करने में अपना गौरव मानने लगे बल्लभी राजाओं के ताम्रपत्रों से तो यही फलित होता है कि जो अपभ्रंश में रचना करना नहीं जानता उस पंडित को राजसभा में सम्मान नहीं मिल सकता था, यहां पर न भूलना चाहिये कि हिन्दी-काव्य-धारा के प्रथम निर्माता हमारे अपभ्रंश के कवि हैं। राहुलजी शब्दों में—

अपभ्रंश के कवियों को विस्मरण करना हमारे लिये हानिकी वस्तु है। यही कवि हिन्दी काव्य-धारा के प्रथम स्रष्टा थे। वे अश्वघोष भास कालिदास और बाणकी सिर्फ जूठी पत्तलें नहीं चाटते रहे, बल्कि उन्होंने एक योग्य पुत्रकी तरह हमारे काव्य क्षेत्र में नया सृजन किया है। नये चमत्कार, नये भाव पैदा किये ... ...

हमारे विद्यापति कबीर, सूर जायसी और तुलसी के यही उज्जीवक और प्रथम प्रेरक रहे हैं। उन्हें छोड़ देनेसे बीचके काल में हमारी बहुत हानि हुई और आज भी उसकी सम्भावना है।"

हिन्दी काव्य धारा प्र पृ-१२ ।

"जैनोंने अपभ्रंश—साहित्य की रचना और उसकी सुरक्षा में सबसे अधिक काम किया"

वही पृ १६

राहुलजीकी उपर्युक्त उदार विचार धारा में स्वर मिलाते हुए बिना किसी संकोचके कहना चाहिये कि आज भारत में जितनी भी प्रांतीय भाषा-उपभाषाएं हैं—उन सभी की जड़ अपभ्रंश में मिलेगी खासकर हिन्दी, मराठी गुजराती और बंगला भाषा के प्राचीन साहित्य को देखेंगे तो बहुसंख्यक तत्सम और तद्भवरूप अपभ्रंश के ही मिलेगा।

भारतीय भाषाविज्ञानकी अपेक्षासे जैन—अपभ्रंश साहित्यका अध्ययन मनन आवश्यक ही नहीं, पर अनिवार्य है। सरहपा, कण्हपा स्वयंभू पुसुकपा महाकवि पुष्पदंत, देवसेन शान्तिपा, जोइन्दु रामसिंह धनपाल, कनकामर आदि अपभ्रंश भाषाके कवि आचार्य श्री जिनदत्तसूरिजी के पूर्व हो गये हैं। इन में से कई तो—जैसे स्वयंभू पुष्पदन्त—अत्यन्त उच्चकोटि के सफल साहित्यकार और सुन्दर शब्दशिल्पी थे।

बारहवीं शताब्दी तक अपभ्रंश का प्रवाह बहुत उत्तम रीति से चलता रहा। इस काल के विद्वान् आचार्यों में श्री अभयदेव सूरि—(जयतिहुयण स्तोत्र रचना काल वि० ११२८) साधारण (विलासवई कहा र० का ११२३) श्री वर्द्धमानसूरि (ऋषभ चरित्र ११६० इस काव्य में अपभ्रंश का—शिर भाग आता है जो इस भी इसी कोटि में लिया गया है, श्री देवचन्द्र सूरि—शान्तिनाथ चरित्र वि० ११६०) अब्दुल रहमान (संदेश रासक प्राचीन भाषा और भावों की सृष्टि करने वाले विद्वानों में इन का स्थान सर्व प्रथम है।) लक्ष्मण गणि (सुपासनाह चरियं,

वि ११५०, इस में भी अपभ्रंश का भाग है वादि देवसूरि और आचार्य हेमचन्द्रसूरि प्रमुख हैं। प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओंकी सुरक्षामें आपका प्रधान सहयोग रहा। खेद है कि ऐसे विद्वानोंको भी हमारे हिन्दीके विद्वान् आजतक समुचित रुपेण नहीं पहचान पाये। इन विद्वानों ने अपने ग्रन्थो में तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितिओं का दिग्दर्शन कराते हुए, उस समय के मानव समाजकी अनुभूतियो का संग्रह किया है जो प्राचीन होते हुए भी वर्तमान में उनसे हमें बड़ी प्रेरणाए और आध्यात्मिक शान्ति का प्रखर आलोक—मिलते हैं। यदि इन ग्रन्थों को केवल भाषाविज्ञान की दृष्टि से ही अध्ययन का विषय बनाया जाय तो निःसन्देह हिन्दी भाषाविज्ञान का मुख उज्ज्वल हुए बिना न रहेगा। अफसोस है कि इन में से बहुत ग्रन्थो का प्रकाशन वर्षों पूर्व हो चुका है पर हिन्दी के क्षेत्र में कि के कहे जाने वाले भाषातत्त्वविदो ने न जाने इनका उपयोग अपने अध्ययन में क्यो नहीं किया।

हिन्दी भाषा के प्रारम्भिक इतिहास में आचार्य श्री हेमचन्द्र सूरि जी का स्थान अग्र कोटि का है। आप के अतिरिक्त समय में अपभ्रंश का साहित्य पर्याप्त उन्नत रहा। आपने भी अपनी जीवन साधना स्वरूप तीन ग्रन्थ इस भाषा में निर्माण किये (गा ओ सि xxxvii)जिनका कुछ अंश पंडित राहुल सांकृत्यायनने हिन्दी काव्यधारामें उद्धृत किये हैं। परन्तु उन पर राहुलजीने जो भावा

कमल द्वारा प्रवाहित प्रवाह के फल स्वरूप जो कलात्मक रचनायें एकत्रित हुई हैं वे आज भी उस स्वर्ण युगकी सुखद स्मृतियों को लिये हुए हैं।

चित्रकलामें गुजरात कितना आगे रहा है, इस विषय पर परिपूर्ण प्रकाश डालने वाले प्राचीन साधन बहुत ही अल्प उपलब्ध हुए हैं। पर हमें तो यहां इस पर सीमित ही विचार करना है आचार्य श्री के समय या तो उसके बाद के कुछ चित्र जैन ताड़ पत्रीय पुस्तिकाओं के—काष्ठ फलक पर सुन्दर रेखाओं रंग में चित्रित प्राप्त हुए हैं, वे भारतीय मध्यकालीन चित्र कला के उत्कृष्ट नमूने भले ही न कहे जा सकें, पर रङ्ग और रेखाओं के विकास की दृष्टिसे इनका स्थान ऊंचा है। तत्कालीन चित्र कला के तत्त्वोंका अध्ययन इनके सूक्ष्मतर परिशीलनपर निर्भर है। हमें स्पष्ट शब्दों में बिना किसी अतिशयोक्ति से कहना चाहिये कि मध्य कालीन चित्र कलाके मुलको व्यक्त करने वाले अनेकों—मौलिक साधनों का निर्माण जैनों ने किया है जो आजतक बहुत कुछ अंशों में उपलब्ध भी है। परन्तु खेद है कि भारतीय चित्र कलाके मर्मज्ञों का ध्यान अभी तक इस ओर आकृष्ट नहीं। वे पुकार अवश्य रहे हैं कि गुप्त पूर्व-कालीन चित्र नहीं मिलते, पर हम उन्हें विश्वास दिला देना चाहते हैं वे खोज ही नहीं करते। अनुभव तो यह बतला रहा है कि खोजी को किसी भी वस्तुकी कमी नहीं रहती। अस्तु

भारतवर्षके इस ऐतिहासिक, साहित्यिक, कला तथा राजनीतिक पुण्य भूमिपर इस प्रधान नायकका चित्र अंकित है। इन राजाओंमें से

भक्तों पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे सूरिजी का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा। क्योंकि मानव संस्कृतिके शाश्वत सिद्धान्तों के उपदेश इनके द्वारा ही संभव है। आध्यात्मिक संस्कृतिके अमरत्वका जिन्हें पान किया है वेही स्पष्ट रूपसे संसारको उनके वास्तविक सुखका मोक्षका—मार्ग प्रदर्शन करा सकते हैं। प्रभाव—इसीका पड़ेगा जो कर्मठ होगा। भारतीय मानव समाजका इतिहास बतला रहा है कि मानव संस्कृतिका जितना भी विकास आजतक हुआ है केवल भौतिकवादके परमत्यागी और अध्यात्मवादके समर्थक इन ऋषि मुनियोंके शुभ प्रयत्नोंसे ही।प्रस्तुत जीवन चरित्रपढ़नेसे आप लोगोंको मालूम होगा कि आचार्य महाराजका प्रत्यक्ष रूपसे भी कुछ राजाओंसे सम्बन्ध था। अजमेरके चौहान नरेश अर्णोराज (आनल्ल-आना) को एवं त्रिभुवनगिरि के यादव राजा कुमारपाल। (जिसकी प्रतिकृति जेसलमेरके भंडारमें सूरिजीके चित्रके साथ है) यह सूरीश्वरजीके उत्कृष्ट चारित्र एवं विद्वज्जनसुशोभित प्रचण्ड प्रतिभाका ही विकास समझना चाहिये।

सूरिजी के अद्भुत कार्य—

उपयुक्त विवेचन में बताया गया है कि श्रमण संस्कृति को कलंकित करने वाले चैत्यवासियोंका जैन समाज में बाहुल्य था। आचार्य महाराज श्री जिनदत्तसूरिजीके समय में भी इन लोगोंका विकास तो नहीं पर समाजमें स्थान अवश्य था। उत्कृष्ट चारित्र पात्र आचार्य श्रमणसंस्कृति का पतन कैसे देख सकते थे? आचार्य

महाराज ने मरुभूमिमें विहार कर जयदेवाचार्य जिनप्रभाचार्य आदि विद्वान चैत्यवासी आचार्यों को प्रतिबोध दे कर अपने गुरु द्वारा प्रवर्तित कार्यके वेग को केवल सुरक्षित ही न रखा पर धर्मोन्नतिके लिये नूतनतम क्षेत्र भी निर्मित किया। जैसा कि प्रस्तुत ग्रंथ से विदित होता है।

सूरिजीने अपने जीवनमें "वसुधैव कुटुम्बकम्" आदर्शको खूब चरितार्थ किया था। आपका उपदेश क्षेत्र जैन समाज तक सीमित न होकर मानवमात्रके हृदय तक विस्तृत था। इसी उदारताके बल पर आपने अपने चारित्रिक प्रभावसे ,एकलक्ष तीसहजार नूतन जैन निर्मित किए। जैन समाजके सम्पूर्ण इतिहासमें यह अभतपूर्व घटना है। यद्यपि कहा अवश्य जाता है कि वीरात् ८४ में उपकेश गच्छीय रत्नप्रभसूरिजी ने बहुसंख्यक जैन बनाये थे जो ओसवालके नामसे प्रसिद्ध हैं परन्तु बाबू पूरणचंद्रजी नाहर कस्तूरमलजी बांठिया महामहोपाध्याय डा रायबहादुर गौरी शंकरजी हीराचंद्रजी ओझा एवं प्रस्तुत ग्रन्थ लेखक आदि पुरातत्वान्वेषी सज्जनों ने ऐतिहासिक दृष्टिसे अनेक अकाट्य प्रमाणोंसे उपर्युक्त बातकी सर्वांङ्गीण असत्यता साबित करदी है।

आचार्यश्रीका साहित्यिक जीवन—

वस्तुतः देखा जाय तो मानव जीवन ही मरणका पूर्व रूप है। जीवन आदर्श रूपसे यदि यापित न हो सका तो जीवनकी वास्तविक परिभाषासे पर्याप्त पार्थक्य विदित होगा। जीवन और मरण उन्हीं के सार्थक हैं जिनका जीवनसे आनन्द एवं मरणसे दुःखा

सुमूतिका अनुभव होता हो। हमारी रायसे प्रत्येक व्यक्तिके जीवन में व्यक्तित्वकी प्रतिच्छाया न हो तो मानव समाजके लिये ही नहीं पर आत्मश्रेयार्थ भी भार रूप है। हां। व्यक्तित्व निर्माणका अवलम्बित है वास्तविक ज्ञानरूपी सुधात्मक मानसिक प्रवाह पर अर्थात् आध्यात्मिक चिन्तनशीलता पर। ऊपर हम बता चुके हैं कि वह युग ही गहन चिन्तन प्रधान था जिस युगमें मानव की उच्चतम भाव-नाओंका मापदण्ड ही आध्यात्मिक मनोवृत्ति हो ऐसी स्थितिमें युगप्रवरोंकी मानसिक परिपक्वताका विकाश किस श्रेणीपर पहुंचा था यह विषय ही बुद्धिगम्य है।

प्राय प्रत्येक युगके युग-पुरुष अद्वितीय प्रतिभा लेकर ही मानव संसारमें अवतीर्ण होते हैं। हमारे पूजनीय आचार्य श्रीजिनदत्त सूरीश्वरजी महाराज भी उच्चतर प्रतिभा की अतुल संपत्ति संचरित करते ही अवतीर्ण हुए। आचार्य श्री के पूर्व अध्ययनका संक्षिप्त परि चय प्रस्तुत ग्रन्थमें उल्लिखित है वही इनकी कुशाग्र-बुद्धिका परिचायक है। आगे चलकर आपका अध्ययन परिपक्व विचारधाराओं का रु कर इनके साहित्यिक ग्रन्थोंमें भिन्न भिन्न प्रकारसे प्रस्फुटित हुआ। आचार्य महाराज पूर्व समकालीन एवं पर्व परवर्त्ती सब युगप्रवर प्रतिभासंपन्न कवि तथा श्रेष्ठ दार्शनिक विख्यात हुए उन सभीमें अपना स्वतन्त्र स्थान रखते हैं।

समयका प्रभाव साहित्य और कलापर अवश्य पड़ता है। तत्कालीन धार्मिक संस्कृतिका दिग्दर्शन तो ऊपर करा ही चुके हैं तदनुसार इनकी साहित्यिक रचना अधिकतर धर्मसे सम्बन्धित है, पर भाव और

भाषाविज्ञानके आलोचनात्मक इतिहास में इन ग्रन्थों का स्थान कम महत्वपूर्ण नहीं। आचार्य महाराजका साहित्यिक जीवन कबसे प्रारम्भ होता है निश्चिततया कहना जरा कठिन है, कारण कि तन्निर्मित समस्त ग्रन्थोंमेंसे किसी भी ग्रन्थमें रचनाकाल निर्दिष्ट नहीं है। अतः क्रमानुसार साहित्यिक विकासके इतिहास पर तब ही प्रकाश डाला जा सकता है जब कि इनके समस्त साहित्यका अन्तःपरीक्षण किया जाय। यहाँ हमारा स्थान सीमित है।

आचार्य महाराजका साहित्य प्रस्तुत ग्रन्थलेखकोंने तीन भागों में विभाजित किया है—स्तुति, औपदेशिक एवं प्रकाणक। स्तुति परक ग्रन्थ रचनाओंमें गणधरसार्द्धशतक अत्यन्त उच्चकोटिका ग्रन्थ है जिसका महत्व गुजरातके इतिहासकी दृष्टिसे बहुत ही अधिक है। यदि हमें विस्मरण न होता हो तो गूर्जरभूमिके लिए "गुजरत्ता" शब्दका सर्वप्रथम प्रयोग आपने ही इस ग्रन्थकी गाथामें किया है। औपदेशिक साहित्य मानव संस्कृतिके उत्थानमें मूल्यवान् सहयोग देता है, क्योंकि सामान्य मानवों को इनसे अपना जीवन स्तर उच्चकोटिमें लानेकी अद्भुत प्रेरणाएं मिलती हैं। महापुरुषों द्वारा कहे गए उपदेश जनके कोमल हृदयपर अपना स्थायी निवास कर लेते हैं। "सवि जीव करूँ शासन रसी इसी भाव दया मन उल्लसी" उपदेशके सिद्धान्तका साक्षात्कार आपके साहित्यमें होता है। साथ ही साथ उस समय चैत्यवासका जो विशेष प्रचार था उसे

आपके उत्कृष्ट विशुद्ध चारित्र्यके विषयमें हमें अपनी ओरसे कुछ कहना नहीं। आपका औपदेशिक साहित्य ही एक स्वरसे इस प्रकारकी विचारधारा प्रवाहित करता है जिसकी तुलना हरिभद्र सूरिजी महाराजके ऊपरि कथित वाक्योंसे सरलतापूर्वक की जा सकती है।

चरित्रनायक और अपभ्रंश भाषा—

श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज ने संस्कृत एवं प्राकृत भाषाओं में अपने जिन ग्रन्थोंकी रचनाएं की हैं वे केवल विषयकी दृष्टिसे ही महत्व पूर्ण नहीं परन्तु तत्कालीन साहित्य और भाषाविज्ञान के इतिहास की दृष्टि से बहुत ही मूल्यवान् हैं। उभय भाषाओं पर आपका पूर्णाधिकार था।

प्रत्येक समय में जैन साहित्य के रचयिताओं ने लोकभाषा का समादर किया है। अपभ्रंश भाषा भी एक समय में भारत की उन्नतशील एवं प्रधान भाषा मानी जाती थी। उच्च श्रेणि के विद्वानों इस भाषामें रचना करनेमें अपनेको गौरवान्वित समझते थे। परन्तु हमें कहते बड़ा दुःख हो रहा है कि इस भाषा के साहित्य भण्डार को जितना परिपुष्ट जैनश्रमणों ने किया है उसका शतांश भी जैनेतर विद्वानों ने नहीं क्योंकि लोकभाषा होने से साहित्यिक रचना में उपयोग करना सम्भवतः उनकी दृष्टि में आत्म सम्मान के विरुद्ध की बात हो तो कोई आश्चर्य नहीं। समयानुसार जो विद्वान मानसिक मोजन नहीं दे सकता उसे किन शब्दों से सम्बोधित किया जाय ? स्मरण रखना चाहिए कि लोकभाषा में

प्रचारित सिद्धान्त ही सर्वमान्य हो सकते हैं इसका क्षेत्र सम्पूर्ण मानव जगत है। वृद्धवादी ने सिद्धसेन दिवाकर को अपनी दर्शनिकी संस्कृत वाग्धारा एवं अकाट्य युक्तियों के बल पर पराजित नहीं पर लौकिक यानी जनता की भाषा के बल पर इन्हें विजित किया था।

आचार्य महाराज श्री जिनदत्तसूरिजी का स्थान हिन्दी और अपभ्रंश भाषा के इतिहास में महत्त्व पूर्ण है। आपने इस भाषा में रचना कर हिन्दी भाषा विज्ञान के लिए अध्ययन की सुन्दर से सुन्दर सामग्री प्रदान की है। परन्तु बड़े ही परिताप के साथ लिखना पड़ रहा है कि अद्यावधि प्रकाशित सभी हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहासों एवं भाषा विज्ञान विषयक ग्रन्थों में इन उत्कृष्ट साहित्यकार का नाम तक नहीं।

हम स्वीकार करते हैं कि हिन्दी भाषाविज्ञान विषयक अन्वेषण अभी बाल्य काल में है, अतः इस विषय पर सार्वभौमिक प्रकाश किसीने नहीं डाला। भाषाविज्ञान पर डॉक्टरेट प्राप्त करना अलग बात है। उसके समस्त अंग-प्रत्यंग पर गहरा अभ्यास करना दूसरी बात है। यह कार्य सीमित समयमें अध्ययन करने वालोंका नहीं अपितु इसी कार्यमें जीवन लगा देनेवाले श्रीमान जिन विजयजी या डॉ सुनीति कुमार चटर्जी जैसे अध्यवसायी विद्वानोंका है। भाषामें ग्रन्थ रचनाका काल [illegible] गाथाकालसे कुछ पूर्व का है। हिन्दी साहित्य में आ[illegible] कालीन

ग्रन्थोंको बहुत उच्च स्थान प्राप्त था। परन्तु इन के समर्थनमें मूलाधार अकाट्य तत्त्वोंका प्राय अभाव था। वर्तमान में भी कई लोग वास्तव में इस काल के कुछ ग्रन्थों को प्राचीन मानते भी होंगे परन्तु तत्कालीन अपभ्रंश जैनसाहित्य एवं भाषाविज्ञान शैली की कसौटी पर यदि इन ग्रन्थों को रखें तो शायद ही कोई ग्रन्थ इस काल में ठहर सके। चर्चरी काल स्वरूप और उपदेश रसायन ये तीनों ग्रन्थ आचार्य महाराज के अपभ्रंश भाषा में गुम्फित हैं। भाषाविज्ञान की दृष्टि से इन ग्रन्थों का महत्व इस लिए भी है कि अपभ्रंश भाषा के अन्तिम और हिन्दी के प्रारंभिक काल अर्थात् वय सन्धिकालीन रचना होनेसे प्राचीन हिन्दी भाषाविज्ञान की अपेक्षा से हिन्दी के सुयोग्य पुत्र अधिक अध्ययन कर इस विषय को प्रकाश में लावेंगे।

आचार्य महाराज के पट्टधर श्री जिनचन्द्रसूरिजी (जो जैन संघ में मणिधारी नाम से विख्यात हैं) ने अल्पवय में भी विविध प्रकार के शास्त्रों का अवगाहन कर लिया था।

जिनदत्तसूरिजी महाराज यति और गद्दीधर भी थे ऐसी आवाज कभी कभी सुनाई देती है। यद्यपि जिनधर्म कथित दशविधलक्षणयुक्त यति हो के अर्थ सूचनमें यदि इस शब्दका प्रयोग किया जाता हो तब तो किसी भी प्रकारका अनौचित्य नहीं पर वतमान रूढ्यर्थसूचक यति के अर्थमें कहा जाता हो तो वतमान जनता तो क्या पर जिनदत्तसूरिजी महाराजके ग्रन्थ ही

इस कथन के सरासर विरुद्ध जा रहे हैं*। जैसा कि "सन्देह दोलावली"से स्पष्ट है। उपर्युक्त पंक्तियें लिखी है, उनका मूलाधार यह और सम्बोधप्रकरण है। इतना तो संसारका प्रत्येक मानव समझ सकता है कि त्यागपूर्ण संस्कृतिमें और वह भी प्रभु महावीर, सुधर्मा स्वामीके सुयोग्य पट्टपरंपरामें—जहां कि केवल त्यागियोंका ही साम्राज्य है—वैराधारियोंको स्थान कहां? आध्यात्मिक साधकों की पंक्तिमें भौतिकवादियों को स्थान मिल सकता है? क्या इस प्रकारके आचरणसे जैनसंस्कृति कलंकित नहीं होगी?

१२ वीं शतीमें भी जो कुछ आचरणात्मक साहित्य उपलब्ध होता है उनमें भवत्स्निर्मित वाङ्मय सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि विकृति दूर करके विशुद्धतम सांस्कृतिक प्रवाह प्रवाहितकर जैन समाजपर आपने जो उपकार किया है उसे हम कैसे भूल सकते हैं?

श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराजका पदव्यवस्थापत्र (जो प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रकाशित है) आचार्य महाराज की प्रथम रचना मानने को जी ललचाता है कारण कि इस पर चैत्यवासियों का आंशिक प्रभाव स्पष्ट है।

---

* आपके चारित्र संबन्धी उच्च विचारधाराका परिचय प्रस्तुत ग्रन्थ ही में सन्निहित है। उदरपूर्ति निमित्त अनेक प्रकारके भौतिक उपकरणोंके महत्व को बढ़ानेवाले साधनों का प्रयोग करना जिनदत्तसूरिजी ने चैत्यवासी आचार्यों के कार्यकाल मठन अपने समय सर्वथा निषिद्ध किया था और आचार्य श्रीजिनेश्वरसूरिजीको महाराज दुर्लभकी राजसभामें शास्त्रार्थ ताम्बूल देते समय उनसे निम्नोक्त श्लोक कहा था, जैसे—

ब्रह्मचारियतीनां च, विधवानां च योषिताम्
ताम्बूल भक्षणं विप्रा! गोमांसान्न विशिष्यते

देखिये "खरतर गुर्वावली" पृ ३

जैसलमेर भंडारस्थ फुटकर पत्रोंमें आनन्दवर्द्धनाचार्य निर्मित "ध्वन्यालोकलोचन"नामक अत्यन्त महत्वपूर्ण ध्वनि विषयक ग्रन्थ लिखवाया था जिसके अन्तिम पत्रका चित्र "भारतीय विद्या" भाग ३ में प्रकाशित है जिसकी पुष्पिका इस प्रकार है :—

(१) पूर्ण एवं काव्यालोकलोचनं

(२) लब्धप्रसिद्धे श्रीमदाचार्याभिनवगुप्तस्य ॥छ॥ समाप्त चेदं लोचन ग्रन्थ ॥

(३) ध सु० १ रवौ ॥ श्रीमज्जिनवल्लभसूरि— शिष्य श्रीमज्जिनदत्तसूरि प्रवरविधिधर्म्मसर

(४) प्रतिवादिकरटिकरटविकटरदपा

चचरणान्दावरमधुकरो विज्ञातसकलशास्त्रार्थ

(५) जिनचन्द्रनाम्नामगणि

युगप्रवरकी शिष्य परम्परा में जितने भी ग्रन्थकार हुए उन सबोंमें मेरुसुन्दरोपाध्याय को हम सोलहवीं शतीके सुप्रसिद्ध लोकभाषामय गद्य साहित्यके उत्कृष्ट कलाकारोंमें उच्चतर स्थान देते हैं। एतद् विषयक १८ ग्रन्थ आपने निर्माण कर जनताको सामयिक मानसिक, आध्यात्मिक विकासोन्मुखी भोजन प्रस्तुत कर, भारतीय भाषा विज्ञानकी प्रचुर सामग्री एकत्र ही न की पर साथ ही साथ आचार्य महाराज द्वारा प्रवर्तित साहित्यिक शैलीके प्रवाहको भी सुरक्षित रखा। शिष्य परम्पराओंमें होनेवाले उत्कृष्ट मुनिवरोंने उच्चतम विद्वद्भोग्य एवं लोकभोग्य साहित्यकी उपवनवाटिकाएं पल्लवित-पुष्पित की जिनका विस्तृत परिचय ग्रन्थमें पृष्ठ ६१ से ७७ तक दिया गया है।

आचार्य महाराज ने अपभ्रंश भाषामें रचना जिस प्रकार प्राचीन हिन्दी या अपभ्रंश से प्रभावित हिन्दी का सूत्रपात किया ठीक उसी प्रकार इनके स्तुति विषय को जितने भी तत्कालीन एवं

परवर्तिकालीन पद्योपलब्ध होते हैं वे भी आचार्य महाराज प्रवर्तित प्रियभाषग्रंथों में ही गुम्फित हैं। उन में से प्राप्त प्राचीन पद्यों का संग्रह प्रस्तुत ग्रन्थ लेखकों ने बड़े ही परिश्रम पूर्वक तैयार कर भाषाविज्ञानवेत्ताओं लिए अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रदान कर, प्राचीन हिन्दी साहित्य का मुख उज्ज्वल किया है। हम हिन्दी साहित्य के उद्भट आलोचकों को उपालम्भ तो नहीं देंगे परन्तु विनम्र शब्दों में इतना ही कहेंगे कि इस प्रकार ११ वीं शती से लगाकर २० वीं शती तक के शृङ्खलाबद्ध भाषा विज्ञान के साधनों का उपयोग अपने अध्ययनमें अवश्य करें।

'युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरि' नामक ग्रन्थ, जो आप के करकमलों में विराजित है इसे लेखकों ने विविध प्रकार के तद्विषयक प्राप्त सभी साधनोंके अध्ययन मननके बाद तैयार किया है, जो जैनाचार्योंके इतिहास की आंशिक पूर्त्ति करता है।

प्रान्तमें अपने परमपूजनीय परमोपकारी गुरुवर्य्य श्रीउपाध्याय पद विभूषित १० ८ श्रीमान सुखसागरजी महाराज एवं आदरणीय ज्येष्ठ गुरुबन्धु मुनिवर्य्य श्री मंगलसागरजी महाराज के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते एवं श्रीयुत अगरचंदजी एवं भँवरलालजी नाहटा को बधाई देते हुए जनतासे अनुरोध करते हैं कि प्रस्तुत ऐतिहासिक जीवनका अधिकाधिक अध्ययन मनन कर आत्मास्मकी जैन संस्कृति को सार्थक कर आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करें।

जैन भवन पंचाल
कलकर स्ट्रीट, कलकत्ता।
ता १-५ १९४७

मुनि कांति सागर
M. R. A. S

युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरि

(जैसलमेर भंडार की काष्ठपट्टिका से)

卐
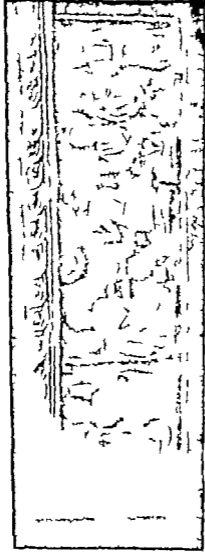
युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरि

पहला प्रकरण

आप भावड़ाचार्य की धर्मशाला में पत्रिका पठनार्थ जा रहे थे, रास्ते में एक उद्धत व्यक्तिने कहा कि "हे श्वेताम्बर ! कमली[1] (कम्बलिका) रखने का क्या प्रयोजन है ?" उत्तर में आपने कहा "तुम्हें निरुत्तर करने और अपनी शोभा बढ़ाने के लिए" ऐसा सुन कर वह निरुत्तर हो कर चला गया। सोमचन्द्र मुनि धर्मशाला पधारे। वहाँ अनेक अधिकारियों के पुत्र भी पढ़ते थे वे भी पढ़ने लगे।

एक दिन परीक्षार्थ आचार्य ने आपसे पूछा—हे सोमचन्द्र ! "न विद्यते वकारो यत्र स नवकारः इति यथार्थं नाम ?" (अर्थात् जिसमें वकार नहीं उसे नवकार कहते हैं, क्या यह ठीक है ?) मुनिराजश्री सोमचन्द्रने तत्काल उत्तर दिया कि "नवकरणं नवकारः इति व्युत्पत्ति कार्या (नव करणात्मक नवकार होता है) यह व्युत्पत्ति संगत है। ऐसा सुनकर आचार्य ने विस्मित होकर सोचा इसका उत्तर बहुत ठीक है।

एक दिन लोच (केशलुंचन) करने के कारण सोमचन्द्र पठनार्थ न गये। वहाँ पढ़ने की यह व्यवस्था थी कि यदि एक भी विद्यार्थी अविद्यमान होता तो आचार्य व्याख्यान—वाचना नहीं देते थे। नियमानुसार आचार्य के व्याख्यान न

---

१ पुस्तक सुरक्षित रखने के लिए लपेटने के एक विशेष प्रकार के वेष्टन को कमली कहते हैं। यह अर्थ यहाँ रहे हुए शब्द को श्लेष करके कहा गया प्रतीत होता है।

देने पर अधिकारियों के पुत्रों ने गर्व के साथ कहा—आचार्य महाराज ! हमने सोमचन्द्र के स्थान पर यह पत्थर रखा है, आप व्याख्यान दीजिए। उनके अनुरोध से आचार्य श्री ने व्याख्यान दिया। दूसरे दिन सोमचन्द्रजीने सहपाठियों से पूछा क्या मेरी अविद्यमानता में भी कल तुम्हें वाचना दी गई थी ?" उन्होंने कहा हाँ ! हमने तुम्हारे स्थान पर पाषाण रख दिया था"। सोमचन्द्रजीने कहा "पाषाण कौन है यह अभी मालूम पड़ जायगा। जितनी पंजिका पढ़ाई गई है, पूछने पर जो यथार्थ व्याख्या न कर सकेगा वही पाषाण समझा जायगा।" ऐसा सुनकर आचार्य ने कहा—"सोमचन्द्र ! मैं तुम्हारे सद्गुणों से भली भांति परिचित हूं पर क्या करूँ इन लोगों की प्रेरणा से व्याख्यान देना पड़ा इस प्रकार मेधावी सोमचन्द्रने अपनी कुशाग्र बुद्धि की छाप आचार्य और सहपाठियों पर अच्छी तरह जमा दी। आप श्री ने सात वर्ष पर्यन्त पाटणमें रह कर विद्याध्ययन किया एवं वादियों को परास्त कर ख्याति प्राप्त की।

आपकी विद्वत्ता की ख्याति सर्वत्र व्याप्त हो गई। आप श्री को बड़ी दीक्षा आचार्य श्री अशोकचन्द्रजी के कर

---

१ ये जिनेश्वरसूरिजी के शिष्य श्री वर्द्धमानगणि के शिष्य थे। श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने इन्हें विशेष रूप से पढ़ा कर आचार्य पद दिया था। इन्होंने प्रसन्नचन्द्र हरिसिंह और देवभद्र को आचार्य पद दिया था।

बाद समझूँगी कि मेरा पुत्र एक महान् धर्म प्रचारक और जगदुपकारक होगा" उपाध्यायजी ने पूछा "यह के वर्ष का है?" उत्तर में बाहड़ देवी ने निवेदन किया—"इसका जन्म सं० ११३२ में हुआ है। उपाध्यायजीने ९ वर्ष की अवस्था प्राप्त कर सं० ११४१ के शुभ मुहूर्त में बालक को दीक्षित किया और इन नवदीक्षित मुनि का नाम 'सोमचन्द्र' रखा गया।

उपाध्यायजीने सोमचन्द्र मुनि को साध्वाचार के क्रिया कलाप सिखाने के लिए श्री सर्वदेव गणि को आदेश दिया। नवदीक्षित मुनिने श्रावक योग्य सूत्रादि तो पहले घर पर ही पढ़ लिये थे अब गणिजी के तत्त्वावधान में साधु प्रतिक्रमणादि का पठन प्रारम्भ हो गया।

बाल्य प्रतिभा

"होनहार बिरवान के होत चीकने पात" कहावतानुसार हमारे चरित्र नायक ने ९ वर्ष की वय में ही अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय देकर सब को चमत्कृत कर दिया था।

---

१ मनोविजयजी ममताजी लिखित जिनदत्तसूरि चरित्र में दीक्षा समय प्रतीकात्मक किया है। पर वह ठीक नहीं है।

२ ये श्री धर्मदेव उपाध्याय के शिष्य और हरिसिंहाचार्य के भ्राता थे गणधर सार्धशतक बृहद्वृत्ति में लिखा है कि—"अभी तक इनका स्तूप स्तम्भ तीर्थ वैद्यकुल के निकटवर्ती ब्राह्मीसिक्त स्थान के क्षेत्र में अवस्थित होने के कारण मिथ्यादृष्टियों से भी सुरक्षित एवं पूज्यमान है।

बात यह हुई कि जब आप सर्वदेव गणि के साथ बहिर्भूमि पधारे, बाल्य वय के कारण उन्होंने चने के खेत में लगे हुए पौधे को तोड़ा लिया। यह देख कर गणिजीने शिक्षा के निमित्त उनसे रजोहरण एवं मुखवस्त्रिका लेकर कहा—"व्रती होकर भी पौधा तोड़ते हो तो अपने घर चले जाओ। सोमचन्द्रने क्षमायाचना करते हुए तत्काल उत्पन्न सुविमल प्रतिभा से उत्तर दिया कि प्रभो! आप मेरी चोटी जो पहले मेरे मस्तक पर थी, कृपया दे दीजिए।" पर गणिजी चोटी कहां से लाते? वे चकित होकर विचार करने लगे अहो! इस छोटे से बालक का उत्तर भी कैसा प्रतिभासंपन्न है, इसका प्रत्युत्तर भी क्या दिया जाय।" जब यह बात धर्मघोषोपाध्याय जी के पास पहुंची तो उनके भी आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्होंने सोचा कि अवश्य ही यह मुनि बहुत योग्य होनेवाला है।

विद्याध्ययन

वहां से ग्रामानुग्राम विचरते हुए सोमचन्द्र मुनि लक्षण पंजिकादि[1] शास्त्र पठनार्थ पत्तन (पाटण) पधारे। एक बार

---

१ हेमचन्द्रसूरिजी पंजिका शब्द की व्याख्या इस प्रकार करते हैं— "टीका निरन्तर व्याख्या पंजिका पद भंजिका" टीका—ग्रन्थगतं विषमाविषम निरन्तर व्याख्या यस्यां सा टीका विषमाण्येव पदानि भनक्ति पद भंजिका" लक्षण पंजिका अर्थात् व्याकरण शास्त्र।

आप भावडाचार्य की धर्मशाला में पञ्जिका पठनार्थ जा रहे थे, रास्ते में एक उद्धत व्यक्तिने कहा कि "हे श्वेताम्बर! कवली [1] (कवलिका) रखने का क्या प्रयोजन है?" उत्तर में आपने कहा "तुम्हें निरुत्तर करने और अपनी शोभा बढ़ाने के लिए" ऐसा सुन कर वह निरुत्तर हो कर चला गया। सोमचन्द्र मुनि धर्मशाला पधारे। वहां अनेक अधिकारियों के पुत्र भी पढ़ते थ वे भी पढ़ने लगे।

एक दिन परीक्षार्थ आचार्य ने आपसे पूछा—हे सोमचन्द्र! "न विद्यते वकारो यत्र स नवकार इति यथार्थ नाम?" (अर्थात् जिसमें वकार नहीं उसे नवकार कहते हैं, क्या यह ठीक है?) बुद्धिशाली सोमचन्द्रने तत्काल उत्तर दिया कि "नवकरणं नवकार इति व्युत्पत्ति कार्या (नव करनेवाला नवकार होता है) यह व्युत्पत्ति संगत है। ऐसा सुनकर आचार्य ने विस्मित होकर सोचा इसका उत्तर बहुत ठीक है।

एक दिन लोच (केशलुंचन) करने के कारण सोमचन्द्र पठनार्थ न गये। वहां पढ़ाने की यह व्यवस्था थी कि यदि एक भी विद्यार्थी अविद्यमान होता तो आचार्य व्याख्यान—वाचना नहीं देते थे। नियमानुसार आचार्य के व्याख्यान न

---

१ पुस्तक सुरक्षित रखने के लिए लपेटने के एक विशेष प्रकार के वेष्टन को कवली कहते हैं। इस स्थान बीचमें रहे हुए भाग को उद्देश करके कहा गया प्रतीत होता है।

देने पर अधिकारियों के पुत्रों ने गर्व के साथ कहा—आचार्य महाराज! हमने सोमचन्द्र के स्थान पर यह पत्थर रखा है, आप व्याख्यान दीजिए। उनके अनुरोध से आचार्य श्री ने व्याख्यान दिया। दूसरे दिन सोमचन्द्रजीने सहपाठियों से पूछा क्या मेरी अविद्यमानता में भी कुछ तुम्हें वाचना दी गई थी? उन्होंने कहा हाँ! हमने तुम्हारे स्थान पर पाषाण रख दिया था"। सोमचन्द्रजीने कहा "पाषाण कौन है यह अभी मालूम पड़ जायगा। जितनी पत्रिका पढ़ाई गई है, पूछने पर जो यथार्थ व्याख्या न कर सकेगा वही पाषाण समझा जायगा।" ऐसा सुनकर आचार्य ने कहा—"सोमचन्द्र! मैं तुम्हारे सद्गुणों से भली भाँति परिचित हूँ पर क्या करूँ इन लोगों की प्रेरणा से व्याख्यान देना पड़ा इस प्रकार मेधावी सोमचन्द्रने अपनी कुशाग्र बुद्धि की छाप आचार्य और सह पाठियों पर अच्छी तरह जमा दी। आप श्री ने आठ वर्ष पर्यन्त पाटणमें रह कर विद्याध्ययन किया एवं वादियों को परास्त कर ख्याति प्राप्त की।

आपकी विद्वत्ता की ख्याति सर्वत्र व्याप्त हो गई। आप श्री को बड़ी दीक्षा आचार्य श्री अशोकचन्द्रजी के कर

---

१ ये जिनेश्वरसूरिजी के शिष्य श्री वर्धमानगणि के शिष्य थे। श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने इन्हें विशेष रूप से पढ़ा कर आचार्य पद दिया था। इन्होंने प्रसन्नचन्द्र हरिसिंह और देवभद्र को आचार्य पद दिया था।

स्थान में सोमचन्द्र मुनि आये। उन्हें इस पद के सर्वथा योग्य समझ कर सर्वसम्मति से एक पत्र भेजा कि "श्रीजिनवल्लभ सूरिजी के पद स्थापना के समय आप आमन्त्रित किये जाने पर भी पहुँच न सके थे पर इस बार विलम्ब न कर शीघ्र ही चित्तौड़ पहुँचें वहाँ श्री जिनवल्लभ सूरिजी के पट्ट पर नवीन आचार्य स्थापन किये जायेंगे।" देवभद्रसूरिजी के सम्वाद को पाकर सोमचन्द्र मुनि शीघ्र ही चित्तौड़ पधारे। वहाँ देवभद्राचार्य भी आ पहुँचे। श्रीजिनवल्लभसूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित साधारण शाह के बनवाये हुए श्री महावीर

१ ये चित्तौड़ निवासी थे जब जिनवल्लभगणि वहाँ आये तो इन्होंने उनके उपदेशों से प्रभावित होकर उनके पास व्रत ग्रहण करना निश्चय किया और बीस हजार रुपये का परिग्रह परिमाण व्रत लेने के लिए गुरु महाराज से निवेदन किया। गुरु महाराज ने अपने निमित्त ज्ञान से इनका भावी भाग्योदय ज्ञात कर परिग्रह परिमाण बढ़ाने का संकेत किया। साधारण सेठ ने कहा—इस समय मेरी स्थिति ५) की भी नहीं है अतः १) का व्रत दिला दीजिये? पर गुरु महाराज ने बतलाया कि पुण्य का भाग्य पलटते देर नहीं लगती तब इन्होंने अपना भाग्योदय जान कर १ लाख रुपये का परिग्रह परिमाण व्रत लिया। जिससे भाग्य और गुरु महाराज की कृपा से इन्हें उत्तरोत्तर सफलता मिलने लगी और अल्प काल में ये चित्तौड़ के प्रसिद्ध धनवान् और राज्यमान्य श्रेष्ठी हो गये। इन्होंने चित्तौड़ में श्री महावीर स्वामी का मन्दिर निर्माण करवाके श्रीजिनवल्लभ सूरिजी के कर कमलों से प्रतिष्ठा करवाई थी।

हुआ था, किन्तु दुर्दैव ने ऐसे पुरुष रत्न को भी हर लिया।" इसप्रकार चिन्ता करते हुए विचार उत्पन्न हुआ कि चिन्ता करने से क्या होगा? श्रीजिनवल्लभसूरिजी के पद पर किसी प्रभावक पुरुष को स्थापित करना परमावश्यक है।

विद्यमान थे। चैत्यवास के विरुद्ध आपका आक्रमण बड़ा ही शक्ति सम्पन्न था। स्थान स्थान पर आपने विधिचैत्य-जिनालयों में सुविहित विधियों का प्रचार किया एवं नियमों को शिलापट्ट पर प्रशस्ति के रूप में उत्कीर्ण करवाये। संघपट्टक ग्रन्थ आपके चैत्यवास विरोध का सबल परिचायक है। आपके द्वादशकुलक ग्रन्थ द्वारा वागड़ देश में जैनधर्म का जबरदस्त प्रचार हुआ, द्वादशकुलकवृत्ति के अनुसार इससे सारे वागड़ देश की जनता प्रतिबोध पाई थी। सोमकुंजर की पट्टावलि के अनुसार वागड़ देश में आपके द्वारा २ हजार व्यक्तियों ने जैन धर्म का प्रतिबोध पाया था। धारानगरी के राजा नरवर्म को आपने अपनी विद्वद् प्रतिभा से चमत्कृत किया था। आपने चित्तौड़, नागपुर (नागौर), नरवर आदि में विधिचैत्यों की प्रतिष्ठा की थी। आपके ज्ञान ध्यान से प्रभावित हो कर चित्तौड़ में चामुण्डा देवी आपकी भक्त हो गई। चित्तौड़ में ही श्री देवभद्राचार्यजी ने आप श्री को सं. ११६७ आषाढ़ सुदि ६ के दिन आचार्य पद देकर श्रीमद् अभयदेव सूरिजी के पट्ट पर स्थापित किये थे। सं ११६ के मिती कार्तिक कृष्णा १२ को रात्रि के चतुर्थ प्रहर में आप समाधि मरण द्वारा चतुर्थ देवलोक को प्राप्त हुए।

कई लोग इनके अभयदेव सूरिजी के शिष्य होने में संदेह करते हैं

स्थान में सोमचन्द्र मुनि आये। उन्हें इस पद के सर्वथा योग्य समझ कर सर्वसम्मति से एक पत्र भेजा कि "श्रीजिनवल्लभ सूरिजी के पद स्थापना के समय आप आमन्त्रित किये जाने पर भी पहुँच न सके थे पर इस बार विलम्ब न कर शीघ्र ही चित्तौड़ पहुँचे वहां श्री जिनवल्लभ सूरिजी के पट्ट पर नवीन आचार्य स्थापन किये जायेंगे।" देवभद्रसूरिजी के सम्वाद को पाकर सोमचन्द्र मुनि शीघ्र ही चित्तौड़ पधारे। वहां देवभद्राचार्य भी आ पहुँचे। श्रीजिनवल्लभसूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित साधारण साह के बनवाये हुए श्री महावीर

---

१ ये चित्तौड़ निवासी थे जब जिनवल्लभगणि वहां आये तो इन्होंने उनके उपदेशों से प्रभावित होकर उनके पास व्रत ग्रहण करना निश्चय किया और बीस हजार रुपये का परिग्रह परिमाण व्रत देने के लिए गुरु महाराज से निवेदन किया। गुरु महाराज ने अपने निमित्त ज्ञान से इनका भावी भाग्योदय ज्ञात कर परिग्रह परिमाण बढ़ाने का इंगित किया। साधारण सेठ ने कहा—इस समय मेरी स्थिति ५) की भी नहीं है अतः १) का व्रत दिया दीजिये ? पर गुरु महाराज ने बतलाया कि पुरुष का भाग्य पलटते देर नहीं लगती तब इन्होंने अपना भाग्योदय जान कर १ लाख रुपये का परिग्रह परिमाण व्रत लिया। अपने भाग्य और गुरु महाराज की कृपा से इन्हें उत्तरोत्तर सफलता मिलने लगी और अल्प काल में ये चित्तौड़ के प्रसिद्ध धनवान् और राजमान्य श्रेष्ठी हो गये। इन्होंने चित्तौड़ में श्री महावीर स्वामी का मन्दिर निर्माण करवाके श्रीजिनवल्लभ सूरिजी के कर कमलों से प्रतिष्ठा करवाई थी।

स्वामी के बिम्बोद्देश में पदस्थापना करने का निश्चय किया गया।

श्रीदेवभद्राचार्यजी ने अपने विचारे हुए मुहूर्त के सम्बन्ध में एकान्त में पं० सोमचंद्रजी से कहा कि—"तुम्हारी पदस्थापना का मुहूर्त अमुक दिन है" उन्होंने कहा —"आपने विचार किया वह ठीक है पर यदि इस लग्न में पद स्थापना होगी तो मेरी चिरायु नहीं होगी। यदि इसके ६ दिन पश्चात् शनिवार का हो तो जैन शासन की उन्नति कर सकूंगा।" देवभद्राचार्यजी ने

---

१ खरतरगच्छ की पट्टावलियों में लिखा है कि जब श्रीजिनदत्त सूरिजी सूरिपद प्राप्ति के लिये चित्तौड़ जा रहे थे तो रास्ते में बागड़पुर में अनशन पर स्थित उपाध्याय कुमारगणने अपने अंतिम समय में इन्हें आराधना कराने का अनुरोध किया आप श्री ने उन्हें भली भांति आराधना कराई थी। समाधिमरण द्वारा वे देव हुए और इन (चरित्र नायक) के उपकार को स्मरण कर प्रसन्न हो कर कहा कि पद स्थापना के लिये ३ मुहूर्त निकाले गये हैं जिनमें से पहले में पद स्थापना होने से अल्पायु, द्वितीय में संघ भेद और तृतीय में धर्म प्रभावना का योग है पर यह बात आप किसी से मत कहना। इन्होंने (सोमचन्द्रजी) चित्तौड़ पधार कर प्रथम मुहूर्त कायोत्सर्ग स्थित रह कर बिता दिया। दूसरे मुहूर्त के समय भी कायोत्सर्ग प्रारम्भ किया आचार्य ने आतुरता वश अनुरोध करके तृतीय मुहूर्त में ही इनको आचार्य पद देकर श्रीजिनवल्लभ सूरीजी के पट्ट पर स्थापित कर दिया।

कहा ठीक है, वह मुहूर्त भी कोई दूर नहीं है अतः वैसा ही किया जायगा।"

निर्दिष्ट शुभ मुहूर्त संवत् ११६९ मिति वैशाख कृष्णा ६ शनिवार के संध्या समय बड़े महोत्सव पूर्वक साधारण श्रेष्ठी के बनवाये हुए महावीर स्वामी के विधिचैत्य में श्री जिनवल्लभ सूरिजी के पद पर श्री देवभद्राचार्यजी ने सोमचन्द्रजी को स्थापित कर उनका नाम श्रीजिनदत्तसूरि प्रसिद्ध किया। नाना प्रकार के वाजिंत्र बजते हुए बड़े समारोह के साथ सूरि महाराज उपाश्रय पधारे। प्रतिक्रमणादि करने के पश्चात् श्री देवभद्राचार्यजी ने वन्दना करके सूरिजी से कहा कि धर्म-देशना दीजिये। तब पूज्यश्री ने संघ के समक्ष सिद्धान्तीय

प्राकृतप्रबन्धावली के कथनानुसार लग्नादि आराधना ज्योतिर्विदाचार्य (कूर्चपुरीय) श्रीजिनेश्वरसूरिजी ने करवाई थी। उन्होंने पहले मुहूर्त में पट्ट स्थापना होने पर अल्पायु और दूसरे मुहूर्त में शासन प्रभावक होने का कहा था। दो मुहूर्त और उसके फल की पुष्टि गणधरसार्धशतक बृहद्वृत्ति से होने के कारण हमारे अनुमान से १ मुहूर्त वाला प्रवाद रुद्रपल्लीय गच्छ भेद होने के कारण प्रचलित हुआ ज्ञात होता है। पट्टावलियों में लिखा है कि पदस्थापना के बाद अकस्मात् [illegible] आने पर सूरिजी ने इसे गच्छभेद होने का सूचक बतलाया था।

१ श्रीधर्मसिंहजी चौधरी ने श्रीजिनदत्त सूरि चरित्र में जेठ वदि ६ लिखा है पर यह ठीक नहीं है।

उदाहरणों के साथ हृदयहारी और प्रमोदकारी धर्म-देशना दी। देशना सुनकर सब लोग बड़े ही प्रसन्न हुए और देवभद्राचार्यजी की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे कि धन्य है इन्हें जिन्होंने गच्छ में गौर वर्ण वाले अनेक रूपवान साधुओं को छोड़कर इस कृष्ण देह वाले श्यामवर्ण के पात्ररत्न की परीक्षा कर श्री जिनवल्लभसूरिजी के पट्ट को देदीप्यमान कर दिया। रत्नों की परीक्षा अनुभवी जौहरी ही कर सकते हैं हम स्थूल बुद्धि वाले क्या जानें। वस्तुतः सिंह के स्थान पर सिंह ही शोभा देते हैं। श्री जिनदत्तसूरिजी बड़े ही विद्वान प्रतिभासम्पन्न, निर्भय और श्री जिनवल्लभसूरिजी के पद के सर्वथा योग्य ज्ञात होते हैं

औदार्य्य

एक दिन जिनशेखर मुनि के साध्वाचार से विपरीत

---

१ [illegible] वृत्ति और प्रत्येकबुद्धचरित्र की प्रशस्ति से भी इसका समर्थन होता है।

२ जब श्रीजिनवल्लभगणि को उनके गुरु श्रीजिनेश्वरसूरिजी ने श्रीमद् अभयदेवसूरिजी के पास सिद्धान्त अध्ययन के लिये भेजा था उस समय उनके साथ वैयावच्च करने के लिए जिनशेखर मुनि को भेजनेका उल्लेख गणधर सार्धशतकबृहद्वृत्ति के अन्तर्गत जिनवल्लभसूरि चरित्र में है। इससे जिनवल्लभसूरिजी के साथ जिनशेखरमुनि का प्राचीन संबन्ध प्रमाणित होता है। इन्हीं जिनशेखर उपाध्याय से खरतरगच्छ की रुद्रपल्लीयशाखा

कदाचित् अयुक्त काम करने से श्री देवभद्राचार्यजी ने उन्हें गच्छ से बहिष्कृत कर दिया। तब वे जिस ओर श्री जिनदत्तसूरिजी बहिर्भूमि गये थे, उस मार्ग में जाकर खड़े हो गये और पूज्यश्री के चरणों में गिर कर दीनभाव से कहने लगे—"प्रभो! मेरे अपराध को एक बार क्षमा कीजिये। भविष्य में फिर ऐसा कदापि नहीं करूंगा।" दयानिधान श्रीजिनदत्तसूरिजी ने यह सुन कर उन्हें पुनः गच्छ में सम्मिलित कर लिया। यह बात श्रीदेवभद्राचार्यजी को अखरी और उन्होंने सूरिजी से कहा "यह कार्य ठीक नहीं हुआ यह सुलभ नहीं होगा।" सूरिजी ने कहा — श्रीजिनवल्लभसूरिजी की सेवा में ये बहुत वर्षों तक रहे हैं अतः जहाँ तक हो सके निभाना ही ठीक है।

विहार

एक बार सूरिजी से श्रीदेवभद्राचार्यजी ने श्रीपत्तन के

की प्रसिद्धि हुई थी। ये रुद्रपल्ली के निवासी थे। उनके अनुयायियों के सम्बन्ध में आगे उल्लेख किया जायगा। रुद्रपल्ली स्थान के नाम से इनकी परम्परा रुद्रपल्लीयगच्छ के नाम से प्रसिद्ध हुई थी। इस शाखा के १ अभयदेव सूरि (सं. १२७८ में जयन्तविजय काव्य रचयिता), २ प्रभानन्दसूरि ३ सोम-तिलक सूरि, ४ देवेन्द्र सूरि, ५ पृथ्वीचन्द्र ६ [illegible] ७ धर्मघोषसूरि ८ सो तिलक, ९ गुणाकर सूरि, ११ अभयप्रभाचार्य १२ [illegible] की कृतियाँ उपलब्ध हैं। इस गच्छ (शाखा) की आचार्य परम्परा १६ वीं शती तक व यति परम्परा १७ वीं शती तक विद्यमान थी।

आसपास विचरनेके लिये विज्ञप्ति की। उनकी विज्ञप्ति के अनुसार सूरिजी ने श्रीपत्तन की ओर विहार करने के विचार से देव गुरु के स्मरणार्थ तीन उपवास किये। आपके स्मरण से आकर्षित हो स्वर्गीय श्री हरिसिंहाचार्यजी प्रत्यक्ष हुए। उन्होंने पूछा—मुझे स्मरण करने का क्या प्रयोजन है? सूरिजी ने कहा—मेरे किस ओर विहार करने से शासन का भावी उद्योत होने वाला है यह फरमावें तब वे उन्हें मरुस्थलादि की ओर विचरने का संकेत कर अन्तर्धान हो गए।

इसी साल विक्रमपुर[1]—मारवाड़ के मेहर भासर आसल भरतादि श्रावक व्यापार के निमित्त यहाँ आए। वे सूरिजी के दर्शन एवं वचन श्रवण कर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और उनके परम भक्त श्रावक हो गए। भरत श्रावक तो पठनार्थ गुरुजी के पास रहा मेहर भासरादि सब अपने देश और गये। वहाँ जाकर उन्होंने सूरिजी के विशुद्ध साध्वाचार की भूरि भूरि प्रशंसा की जिसे सुनकर समस्त संघ ने सूरि महाराज को मारवाड़ पधारने की विनती की। सूरि महाराज ने वहाँ से मारवाड़ की ओर विहार कर दिया।

---

१ यह विक्रमपुर (बीकमपुर) अब भी इसी नाम से प्रसिद्ध फलोदी से ४ मील पर है। कई विद्वानों ने इसे बीकानेर समझने की गलती की है पर बीकानेर सं. १५४५ में बसा था। विशेष जानने के लिये "मणिधारी जिनचन्द्रसूरि" देखना चाहिए।

विशुद्ध प्ररूपणा

सूरिमहाराज ग्रामानुग्राम विचरते हुए क्रमशः नागपुर[1] (नागौर) पधारे। वहां श्रेष्ठिवर्य धनदेव श्रावक निवास करता था। उसने सूरिजी के मुख से आयतन अनायतनादि विषयक विचारों को सुन कर निवेदन किया—"भगवन्! यदि आप एक बात मेरी कही हुई कर तो समस्त श्रावक आपके ही अनुयायी हो जांय।" सूरिजी ने जानते हुए भी पूछा—"धनदेव! वह क्या बात है?" उसने कहा—"यदि आप आयतन—अनायतन विधि और अविधि विषय में मौन

---

१ श्री गौरीशंकर हीराचन्दजी ओझा के मतानुसार नागौर का दूसरा नाम अहिच्छत्रपुर भी है जिसे नागवंशी राजाओं ने बसाया था। प्राचीन काल में अहिच्छत्रपुर जांगल देश की राजधानी थी। नागौर परगने का प्रदेश सपादलक्ष (सवालख) भी कहा जाता है। जैन ग्रन्थों में नागौर का सब से प्राचीन उल्लेख वि. सं. ९१५ का पाया जाता है। इस संवत् में कृष्णर्षि के शिष्य जयसिंहसूरि ने धर्मोपदेशमालावृत्ति यहां बनाई थी। नागौरी तपागच्छ और नागौरी लुं का गच्छ इसी नागौर से सम्बन्धित है।।

२ इन्होंने श्रीजिनवल्लभसूरिजी के उपदेशामृत से नागपुर में श्री नेमिनाथजी का मन्दिर बनवा कर उनके हाथ से प्रतिष्ठा करवाई थी। इन के पुत्र पद्मानंद कवि अच्छे विद्वान थे जिनके रचित वैराग्यशतक (पद्मानंद शतकम्) उपलब्ध है।

३ आयतन-अनायतन का स्पष्टीकरण करते हुए श्री जिनदत्तसूरिजी "चैत्यवंदन कुलक" में लिखते हैं :—

परन्तु वे उसकी वहना बढ़ाती ही हैं, इसी प्रकार उत्सूत्रभाषी के बहुत से अनुयायी हो जायं तो भी भव-परम्परा को बढ़ाने वाले ही हैं। ज्यादा परिवार होने से ही कोई सिद्धि नहीं होती क्या शूकरी के बहुत सा परिवार होने पर भी उसका विष्ठा में मुंह डालना क्या रुक जाता है?"

ये मान-सत्य वाक्य धर्मदेव को कटु प्रतीत हुए पर इससे क्या? शास्त्रों में कहा है कि —

रूसउ वा परो मा वा विसं वा परियत्तउ।
भासियव्वा हिया भासा सपक्खगुणकारिया ॥ १ ॥

[रुष्यतु वा परो मा वा विषं वा परिवर्त्तताम्।
भाषितव्या हिता भाषा स्वपक्षगुणकारिका ॥ २ ॥]

अर्थात्—कोई राजी हो या नाराज हो बात वही कहनी चाहिए जो आत्म हितकर हो।

सूरिजी के इस प्रकार की विशुद्ध प्ररूपणा से कई विवेकी श्रावक प्रतिबोध पाए। वे वहां से ग्रामानुग्राम विहार करते हुए अजमेर पधारे। वहां ठक्कुर आशाधर साढ़ रासल आदि भक्त श्रावक निवास करते थे। सूरिजी के पधारने से वे लोग बड़े आनन्दित हुए। सूरिजी प्रतिदिन देवगृहमार्थ बाहड़ कारित

१ श्रीजिनदत्तसूरिजी के उपदेशरसायनप्रकरण की यह १२ वीं गाथा है।

देवगृह (जिनालय) में आया करते थे। एकबार उस चैत्य के आचार्य आये वे दीक्षा पर्याय में छोटे होने पर भी सूरिजी के देववन्दनार्थ आने पर उन्हें गर्व से वन्दना व्यवहार नहीं करते थे। ठक्कुर आशाधर आदि भक्त श्रावकों को यह अनुचित व्यवहार बहुत अखरा। उन्होंने सूरिजीसे निवेदन किया— "यदि वहां जाने से आगमोक्त मर्यादा का भंग होता है तो फिर वहां जाने से लाभ ही क्या ? इसके बाद श्रावक संघ ने महाराजा अर्णोराज¹ से देवमन्दिर के निमित्त उत्तम भूमि ग्रहण कर नया विधिचैत्यालय निर्माण कराने का निश्चित किया।

---

१ अर्णोराज—अजमेर के संस्थापक महाराजाधिराज अजयदेव और महाराणी सोमलदेवी के पुत्र थे। इनका जन्म संवत् ११७० से पूर्व हुआ। गद्दी पर सम्भवतः सम्वत् ११९० से पूर्व बैठे। इनके राज्याभिषेक के कुछ समय बाद तुर्कों ने अजमेर पर आक्रमण किया। अर्णोराज ने उनको हराया और युद्धस्थल पर आनासागर झील बनाई। मालवा के राजा नरवर्मा को युद्ध में परास्त किया और उसके अनेक हाथी छीन लिये। इन्होंने वर्तमान बीकानेर के उत्तरी प्रदेश को हस्तगत किया हरियाणा प्रान्त जीता और पंजाब के कुछ दक्षिणी भाग भी अधीन किए, श्रीहेमचन्द्र ने अर्णोराज को क्ष्मापराट् की उपाधि सम्बोधित किया है।

अर्णोराज के दो रानियां थी एक मारवाड़ (मरोट) के सोढ़िया राजा सिंहल की पुत्री सुधवा (जगदेव और वीसलदेव की माता) और दूसरी गुर्जराधिपति जयसिंह की पुत्री कांचन देवी (सोमेश्वर की माता)।

अजमेर के प्रमुख श्रावक एकत्र होकर महाराज अर्णोराज के पास गए और निवेदन किया—"स्वामी! हमारे सौभाग्य से गुरुवर्य श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज का यहाँ शुभागमन हुआ है" अर्णोराज ने कहा—"बड़ी प्रसन्नता की बात है, मेरे योग्य कार्य हो सो कहो।" श्रावकों ने कहा—"जैन मन्दिर आदि धर्मस्थान एवं श्रावकों को मकान बनाने के लिए उपयुक्त भूमि खण्ड बतलाइये। प्रत्युत्तर में अर्णोराज ने कहा—"दक्षिण दिशा की ओर पर्वत के पास आप लोग देव मन्दिर आदि यथारुचि बनवा सकते हैं गुरु महाराज के

कुमारपाल के गद्दी पर बैठते ही चाहड़ आदि गुर्जर सामन्तों के भड़काने से अर्णोराज ने गुजरात पर आक्रमण किया। दो वर्षों के युद्ध के बाद अर्णोराज युद्ध (सं. १२०७) में परास्त हुआ। कुछ समय बाद उसके ज्येष्ठ पुत्र जगदेव ने गद्दी के लालच से अर्णोराज की हत्या की। इसके सं. १२०७ तक विद्यमान होने के प्रमाण मिलते हैं।

अर्णोराज अपने समय के अत्यन्त प्रतापी राजा थे। शिवभक्त होते हुए भी वे जैन शासन का सम्मान करते थे। धर्मघोषसूरि ने उनके दरबार में दिगम्बर गुणचन्द्र को पराजित किया। परम भागवत देवबोध उनका सभासद था। आपश्री जिनदत्तसूरि का सम्मान भी उनके हृदय की विशालता और गुणग्राहकता का परिचायक है।

ल्लभ सूरिजी के पट्टधर, सिद्धान्तविशारद, विधिमार्ग प्रचारक श्री जिनदत्तसूरिजी के पधारने का समाचार पा कर आह्लादित हुए और चरण-कमल वन्दनार्थ आये। पूज्यश्री का व्याख्यान श्रवण कर वे अपना अहोभाग्य मानने लगे एवं सूरिजी से अपने प्रश्नों का केवली के सदृश सदुत्तर पाकर अत्यन्त प्रमुदित हो किसीने सम्यक्त्व व्रत किसीने देशविरति[2] किसीने सर्वविरति व्रत स्वीकार किये। उस समय ५२ साध्वियां और बहुत से साधु दीक्षित हुए।

इसी समय सूरिजी ने जिनशेखर मुनि को उपाध्याय पद देकर कई साधुओं के साथ रूद्रपल्ली की ओर विहार करने का

---

१ तत्त्वज्ञान पर सच्ची श्रद्धा कुगुरु, कुदेव कुधर्म को त्याग कर सुगुरु, सुदेव सुधर्म का ग्रहण व्यवहार सम्यक्त्व है। वस्तु के स्वरूप की सच्ची प्रतीति तन्मय आत्मा के स्वरूप का वास्तविक ज्ञान पर पदार्थों से व्यावृत्ति को निश्चय सम्यक्त्व कहते हैं।

२ आंशिक त्याग—गृहस्थ जीवन में रहता हुआ व्यक्ति जितने अंश में त्याग कर सके। इसके अन्तर्गत श्रावक के १२ व्रत हैं जिनका विशेष स्वरूप धर्मबिन्दु आदि ग्रन्थों में देखना चाहिए।

३ सर्वथा त्यागी जीवन का स्वीकार—इसमें ५ महाव्रत मुख्य हैं, मन वचन काया से करना कराना एवं अनुमोदन करने रूप ९ भंग से जीव की हिंसा झूठ चोरी, अब्रह्मचर्य और और परिग्रह को त्याग रूप व्रतों के स्वीकार को सर्वविरति कहते हैं।

दर्शन मुझे भी अवश्य करवावें ।" नरपति के इन
वार्तालाप से प्रमुदित होकर श्रावक लोग अपने घर लौटे।

श्रावकों ने शुभ मुहूर्त में महाराजा अर्णोराज
आमन्त्रित किया। महाराजा ने भी बड़े आडम्बर
उपाश्रय में आकर विनय के साथ सूरि महाराज के
में नमस्कार किया। सूरिजी ने निम्नोक्त आशीर्वाद
नरपति का अभिनन्दन किया :—

श्रिये कृत नतानन्दा विशेष वृष संस्थिता
भवन्तु तव राजेन्द्र । ब्रह्म श्रीपति शङ्करा ॥१॥
तथा—श्रीविश्वेसति सितरां कमल विश्रान्ति रूप्ये
श्री हस्याने शुभ युगल-सम्पाश्रिता विक्रम श्रीः
एषोऽस्मत्र क्षिपति भूमि-लोक वाक्ये निवोमा
नित्यमर्णोराज ! भ्रमति सुधर्म कीर्ति रस्ता ते ॥ इत्यादि

इसके बाद सूरिजी ने धर्म चर्चा करते हुए महाराजा को
प्रभावशाली धर्मोपदेश दिया जिसे सुनकर अर्णोराज बड़े
प्रसन्न हुए और उन्होंने सूरि महाराज को सदैव यहीं रहने
की विनती की। सूरिजी ने कहा —"राजन् ! आपका कहना

---

१ श्री जिनपालोपाध्याय ने गुर्वावली में आशीर्वाद का यह श्लोक
भी दिया है :—

"श्रियेऽस्तु भवतां कृता विशेष वृष संस्थिता
भवन्तु भवतो नृप ब्रह्म श्रीधर शङ्करा ॥"

ठीक है परन्तु एक ही स्थान में रहना हमारे लिए आचार विरुद्ध है, लोकोपकार के हेतु सर्वत्र विचरते रहना ही हमारा कर्तव्य है अतः यथावसर फिर कभी यहाँ आवेंगे"। भूपति धर्मघोष सूरिजी के दर्शन और वार्तालाप से सन्तुष्ट होकर स्वस्थान लौटे।

इसके पश्चात् ठक्कुर आशाधर को स्तंभनपार्श्वनाथ, शत्रुंजयमंडन ऋषभदेव, गिरनारमंडन नेमिनाथजी के सदृश किए, ऊपर छज्जे में श्रीअम्बिकादेवी की देवकुलिका, नीचे गणधरादि की स्थापना करने के सम्बन्ध में उपदेश देकर सूरिजी ने नागहृदेश की ओर विहार किया।

तीसरा प्रकरण

वागड़ देश में धर्म प्रचार और चैत्यवासियोंकी उपसम्पदा

वागड़ देश के श्रावक परमगुरु श्री जिनवल्लभसूरिजी के प्रतिबोधित परम धर्मानुरागी थे। वे अपनी ओर भी जिन

---

१ भारतवर्ष में वागड़ नामके कई प्रदेश हैं। जिनमें से ३ इस प्रकार हैं :—

१ डूंगरपुर, बांसवाड़ा। मेवाड़ का ५६ जिला भी आगे वागड़ में था। इसलिये केशरियाजी व ऋषभदेव [illegible] के जैन तीर्थ भी इसी मेवाड़ के वागड़ में ही है। इस वागड़ के जैन बस्ती और मन्दिर वाले कुछ स्थानों की सूची "जैन पथ प्रदर्शक" वर्ष १ अङ्क ४ में प्रकाशित हुई है।

२ कच्छ राज्य का एक हिस्सा।

३ बीकानेर राज्य से दिल्ली के मार्ग में हांसी हिसारादि रेवाड़ी के आसपास तक का प्रदेश वागड़ कहलाता है। उपर्युक्त वागड़ जहां श्रीजिनवल्लभसूरिजी व श्रीजिनदत्तसूरिजी का विशेष प्रभाव था वही वागड़ देश है।

[illegible] और [illegible] (जो पालनपुर में हो) दोनों की बस्ती वाले प्रदेश को वागड़ कहते हैं।

प्रथम सूरिजी के पट्टधर, सिद्धान्तविशारद विधिमार्ग प्रचारक श्री जिनदत्तसूरिजी के पधारने का समाचार पा कर आह्लादित हुए और चरण-कमल वन्दनार्थ आये। पूज्यश्री का व्याख्यान श्रवण कर वे अपना अहोभाग्य मानने लगे एवं सूरिजी से अपने प्रश्नों का केवली के सदृश सदुत्तर पाकर अत्यन्त प्रमुदित हो किसीने सम्यक्त्व व्रत किसीने देशविरति[२] किसीने सर्वविरति धर्म स्वीकार किये। उस समय ५२ श्राविका और बहुत से साधु दीक्षित हुए।

इसी समय सूरिजी ने जिनशेखर मुनि को उपाध्याय पद देकर कई साधुओं के साथ रुद्रपल्ली की ओर विहार करने का

---

१ तत्त्वार्थ पर सच्ची श्रद्धा कुगुरु, कुदेव कुधर्म को त्याग कर सुगुरु, सुदेव सुधर्म का ग्रहण व्यवहार सम्यक्त्व है। वस्तु के स्वरूप की सच्ची प्रतीति स्वानुभव आत्मा के स्वरूप का वास्तविक ज्ञान पर पदार्थों से ममत्वत्याग को निश्चय सम्यक्त्व कहते हैं।

२ आंशिक त्याग—गृहस्थ जीवन में रहता हुआ व्यक्ति जितने अंश में त्याग कर सके। इसके अन्तर्गत श्रावक के १२ व्रत हैं जिनका विशेष स्वरूप धर्मबिन्दु आदि ग्रन्थों में देखना चाहिए।

३ सर्वथा त्यागी जीवन का स्वीकार—इसमें ५ महाव्रत मुख्य हैं, मन वचन काया से करना कराना एवं अनुमोदन करने रूप ९ भंग से जीव की हिंसा झूठ चोरी अब्रह्मचर्य और और परिग्रह को त्याग रूप व्रतों के स्वीकार को सर्वविरति कहते हैं।

वास की उपसम्पदा ग्रहण की सुनकर पहले भी मेरा वसतिवास स्वीकार करने का विचार हुआ था किन्तु दैवयोग से ऐसा न कर सका। अतः अब तो मुझे श्रीजिनवल्लभसूरिजी के चरण वन्दनार्थ जाकर उनसे उपसम्पदा ले ही लेनी चाहिए" ऐसा विचार करके ही नहीं रह गये पर तत्काल ही कार्य रूप में परिणित करने के लिए सपरिवार वंदनार्थ आए। विनय पूर्वक सूरिजी को वन्दन करने के अनन्तर वार्तालाप करते हुए मधुर सिद्धान्तवचन श्रवण कर आनन्द मग्न हो कहने लगे—अहा। कैसा शोभन उपदेश है, मेरे मनोनुकूल ये ही गुरु हों। इसके बाद उन्होंने शुभ मुहूर्त में सर्व परिग्रह का त्याग कर सूरिमहाराज के समीप उपसम्पदा ग्रहण की।

उपदेशाचार्य के वसतिवास स्वीकार करने का संवाद पाकर श्रीजिनप्रभाचार्य[२] नामक चैत्यवासी आचार्य ने भी चैत्यवास

---

१ एक गुरु का शिष्य अन्य गुरु को अपने गुरु रूप में स्वीकार करता है उसे उपसम्पदा ग्रहण कहते हैं।

२ एक बार वे तुरुष्क देश गये, उनका वैमत्विक परिज्ञान अत्यन्त प्रसिद्ध था अतः पानी मांगकर वहां के अधिकारी ने इनसे पूछा—मेरे हाथ में क्या है? उत्तर में इन्होंने कांटक और घास बतलाया। मुट्ठी खोलकर देखने पर इस प्रत्यक्ष सत्य से विस्मित होकर आचार्य का हस्त-चुम्बन कर "धन्य धन्य!" कहने लगा। आचार्य ने सोचा यह मुझे साथ ले जाकर न मालूम क्या करवाया करेगा" अतः वहां से भागकर स्व स्थान लौट कर आ गए।

छोड़ने का निश्चय किया परन्तु साथ साथ उन्हें यह भी विचार हुआ कि श्रीजिनदत्तसूरिजी के आचार विचार असिधारा के सदृश बड़े कठिन हैं। अब कोई सरल क्रियामार्ग वाला सुविहित आचार्य मिले तो ठीक हो। यह अनुसन्धान करने के लिए उन्होंने अपने केवलिका परिज्ञान का उपयोग किया। पहली बार भी जिनदत्तसूरिजी का नाम आया किन्तु उन्होंने गणना भूल की भ्रांति से दुबारा प्रयोग किया तब भी श्री जिनदत्तसूरि जी का नाम आया। उन्होंने पूर्ण निश्चय के लिए तीसरी गणना प्रारम्भ की, तब आकाश से अग्निपुंज गिरने के साथ ही वाणी हुई कि—"यदि तुम्हें शुद्ध मार्ग से प्रयोजन है तो पुनः पुनः क्यों गिनते हो? संसार समुद्र से निस्तार करने वाले शुद्ध मार्ग प्रदर्शक सुगुरु श्रीजिनदत्तसूरि ही हैं।" यह सुनकर निःशल्य चित्त से श्रीजिनप्रभाचार्यजी सूरिमहाराज के पास आये ज्ञान पूज्य सूरिजी ने कहा— तुम्हारा चिन्तामणि परिज्ञान हमारे पास स्फुरित न हो सकेगा।" उत्तर में जिनप्रभाचार्य ने कहा—भगवन् मुझे उसके उपयोग करने की कोई आवश्यकता नहीं है, मुझे केवल विधिमार्ग से ही प्रयोजन है,

---

१ इससे सूरिजी का साधु धर्म बड़ी उच्च कोटि का पालन करना जान पड़ता है।

२ एक प्रकार का निमित्त शास्त्र।

कृपया आप मुझे अपनी उपसम्पदा देकर कृतार्थ करें।" सूरिजी ने उनका दृढ़ निश्चय जानकर उपसम्पदा प्रदान की। जिनप्रभाचार्य भी सूरिजी के आज्ञानुसार विहार कर विधिमार्ग का प्रचार करने लगे।

सूरिजी का गुणसौरभ सर्वत्र महक उठा। उनके असाधारण ज्ञान कठोर चारित्र ने सर्व-साधारण की तो बात ही क्या? पर उनके विरोधी चैत्यवासियों का भी अपनी ओर आकर्षित कर लिया। उनके सद्गुणों से प्रभावित होकर जयदेवाचार्य और जिनप्रभाचार्य की भांति विमलचन्द्र नामक चैत्यवासी ने भी सुविहित मार्ग स्वीकार किया। इसी समय जिनरक्षित शीलभद्र अपनी माताके साथ और स्थिरचन्द्र[2] वरदत्त नामक दोनों भ्राता भी प्रव्रजित हुए।

इसी प्रकार जयदत्त नामक मन्त्रवादी मुनि (जिनके पूर्वज मन्त्र शक्ति में बड़े ही प्रवीण थे और जिन्हें कुपोषित दुष्ट देव ने मठ कर डाला था) दुष्ट व्यन्तर के उपद्रव से दुःखित

---

१ इनके सं० ११ में पाटननगरी में लिखित "अट्ठावनी पवयणंमि" की प्रति 'अपभ्रंश काव्यत्रयी' के परिशिष्ट में प्रकाशित है।

२ जैसलमेर भंडार की ताड़पत्रीय धर्मार्थ की प्रति में लिखा है सं० ११९० में पाली के भंग होने पर त्रुटित हुए इस ग्रन्थ प्रति को इन स्थिरचन्द्रजी ने अजमेर में लिख कर पूर्ति की थी।

होकर श्रीजिनदत्तसूरिजी के चरणों में उपस्थित हुए और उनके पास दीक्षा (उपसम्पदा) ग्रहण की। शक्तिसम्पन्न पूज्यश्री ने करुणान्वित होकर द्रुत वेग से उनकी रक्षा की।

यति गुणचन्द्रगणि[१] और ब्रह्मचन्द्रगणि[२] ने सूरिजी के पास चारित्र ग्रहण किया। रामचन्द्रगणि भी अपने पुत्र जीवानन्द सहित अन्य गच्छों से खरतरगच्छ को विशुद्ध जान कर श्रीजिनदत्तसूरिजी के आज्ञानुवर्ती हो गए।

इस में से जिनरक्षित शीलभद्र स्थिरचन्द्र वरदत्त आदि

---

१ पहले जब ये श्रावक थे तब एक तुर्क ने इनकी हस्तरेखा देख "यह अच्छा सवार होगा" ऐसा कह कर इन्हें भाग जाने की संभावना से एक सांकलों से बांध दिया। इन्होंने इस विपत्ति में नमस्कार मंत्र का जाप किया जिसके प्रभाव से सांकल टूट गई अतः मुक्त होकर रात्रि के पिछले प्रहर में निकल कर किसी वृद्धा के घर पहुंचे। उसने इन्हें अनाज भरने की कोठी में छिपा लिया जिससे तुर्क के बहुत खोज करने पर भी न मिले और रात के समय निकलकर स्वदेश लौट आये। इस विपत्ति के प्रसङ्ग से वैराग्य प्राप्त कर इन्होंने दीक्षा ग्रहण की। सं. १२२३ में मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरिजी का स्वर्गवास होने पर आपने संस्कृत के ४ श्लोकों द्वारा शोक प्रकट किया था। सं. १२२३ मिती फाल्गुन शुक्ला १ को इनके स्तूप की प्रतिष्ठा विक्रमपुर में श्रीजिनपतिसूरिजी ने की थी।

२ सं. ११७१ संवत में इनके लिखी हुई 'षडावश्यक वृत्ति' की प्रति जैसलमेर के ज्ञानभंडार में सुरक्षित है।

साधु एवं सोमती जिनमती पूर्णश्री आदि साध्वियों को वृत्ति पञ्जिका पंजिकादि लक्षणशास्त्रों का अध्ययन करने के लिए आपने धारानगरी भेजा।

सूरि महाराज ने ग्राम ग्रामकर रूद्रपल्ली की ओर विहार किया। मार्ग के एक ग्राम में एक श्रावक को क्षुद्र व्यन्तर प्रतिदिन प्रचण्ड पीड़ा देता था, उसके पुण्य प्रभाव से सूरि महाराज वहाँ पधारे। उसने आपके समक्ष अपना दुःख निवेदन किया। सूरिजी ने विचार कर देखा यह व्यन्तर मन्त्र तन्त्र से असाध्य है अतः "गणधरसप्ततिका"[1] ग्रन्थ बना कर और उसे टिप्पणक रूप में लिखकर श्रावक को देते हुए कहा कि "इस टिप्पणक पर दृष्टि लगाए रखना" उसने वैसा ही किया ग्रन्थ के ध्यान के प्रभाव से पहले दिन व्यन्तर उसका खटिया तक आया परन्तु छाया ग्रहण न कर सका। दूसरे दिन गृह द्वार से लौट गया और तीसरे दिन आया ही नहीं। श्रावक स्वस्थ होकर सविशेष धर्माराधन करने लगा।

सूरि महाराज रूद्रपल्ली पहुँचे जिनशेखरोपाध्याय संघ सहित सम्मुख आए प्रवेशोत्सव बड़े समारोह से किया गया। आचार्य जिनवल्लभसूरिजी के आज्ञानुयायी १२ कुटुम्बों के बनवाये

---

१ प्रस्तुत ग्रन्थ गणधर सार्धशतक के सदृश है। इसमें कई गाथाएं "गणधर सार्ध शतक" से ज्यों की त्यों और कुछ समान भाव वाली पाई जाती हैं।

हुए ऋषभदेव और पार्श्वनाथ चैत्य युग की सूरिजी ने प्रतिष्ठा की। उनके ओजस्वी व्याख्यान से वहाँ अनेकानेक चमत्कार हुए। कितने ही महानुभावों ने सम्यक्त्वव्रत कइयों ने देशविरति धर्म ग्रहण किया एवं देवपाल गणि प्रभृति कइ व्यक्तियों ने सर्व विरति चारित्र अङ्गीकार किया। रुद्रपल्ली के श्रावकों के अत्यंत अनुराग करने पर भी लाभा-लाभका विचार करते हुए श्रीजयदेवाचार्यजी को वहाँ भेजने की सूचना देकर सूरि महाराज ने पश्चिम की ओर विहार कर दिया

सूरि महाराज वहाँ से क्रम विहार करते हुए बागड़ देश के

---

१ हमारे चरित्रनायक के शिष्य मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरिजी सं० १२२३ में बारही नगर से रुद्रपल्ली पधारे थे। वहाँसे नरपालपुर में एक ज्योतिषी को अपनी ज्योतिष विद्या का चमत्कार दिखाकर पुनः रुद्रपल्ली आकर पद्मचन्द्राचार्य से शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त की थी। फिर वहाँ से बोरसिदान होकर दिल्ली पहुंचे थे। इस उल्लेख के अनुसार रुद्रपल्ली की अवस्थिति दिल्ली प्रान्त के आसपास संभव है। जैसलमेर के भंडार की ताड़पत्रीय प्रति नं० १६ (२) वृत्तवृत्ति सं० १२०० में रुद्रपल्ली में राजा गोविन्दचंद्र के राज्य में लिखी गई है अतएव रुद्रपल्ली संयुक्तप्रान्त के पश्चिमी भाग में ही कहीं होनी चाहिए।

इसी स्थान के नाम से जिनशेखरसूरिजी (जो पहले यहाँ के निवासी थे) की संतति रुद्रपल्लीय के नाम से प्रसिद्ध हुई।

व्याघ्रपुर में पधारे। श्रीमद्देवाचार्यजी वहीं विराजमान थे उन्हें योग्य शिक्षा देकर अपने पास भेज दिए। सूरिजी ने वहीं रह कर श्रीजिनवल्लभसूरि कथित चैत्य गृह विधि अविधि के स्वरूप गर्भित "चर्चरी" नामक ग्रन्थ बनाया और उसे टिप्पणिका के आकार में लिखकर मेहर वासल आदि श्रावकों के पठनार्थ विक्रमपुर भेजा। वहाँ मणिहार नामक श्रावक के घर के पास ही पौषधशाला थी। सूरिजी के भेजे हुए चर्चरी ग्रंथ को वहाँ के भक्त श्रावकों ने उसी पौषधशाला में खोला। मणिहार के उद्दण्ड पुत्र देवधर ने वहाँ आकर "यह चर्चरी टिप्पणक है?" कहते हुए फाड़ डाला। उसके उन्मत्त होने के कारण श्रावकों ने उसका कोई प्रतिकार न कर उसके पिता को उपालम्भ दिया पर वे भी "क्या किया जाय? यह बड़ा हुआ है समझा दूंगा" कह कर रह गए।

सूरिजीने वहाँ के श्रावकों द्वारा उपर्युक्त स्वरूप ज्ञात कर पुनः चर्चरी ग्रंथ की टिप्पणिका लिख भेजी। उन्होंने साथ साथ यह भी फरमाया कि "देवधर के विरुद्ध कुछ भी आन्दोलन न किया जाय। देव गुरु के प्रसाद से वह स्वयमेव सुधर जायगा।" श्रावकों ने चर्चरी ग्रंथ को पाकर पौषधशाला में आनन्द पढ़ा और स्थापनाचार्यजी के डाबे में रख

---

१ विशेष सम्भव वर्तमान बयेरा स्थान है

२ गुरु (आचार्य) की अविद्यमानता में गुरु बुद्धि से जिस वस्तु में

उपाश्रय बन्द करके स्वस्थान चले गए। देवधर ने जब चर्चरी ग्रन्थ के पुनः आने का समाचार पाया तो सोचा कि मैंने पहले इसे फाड़ दिया तब भी आचार्यश्री ने दुबारा भेजा है तो अवश्य ही उसमें कुछ रहस्य होगा। अतः कौतूहलवश उसे पढ़ने के लिए अपने घर के कपाट से पौषधशाला में प्रवेश कर उक्त ग्रन्थ को ध्यानपूर्वक पढ़ना प्रारम्भ किया। वह उसमें वर्णन किए हुए विधिचैत्य अविधिचैत्य के स्वरूपका बिल्कुल नया और न्यायसंगत ज्ञान कर बड़ा ही प्रमुदित हुआ। थोड़ी सी देर में उसके विचारों में आश्चर्यकारी परिवर्तन हो गया। वह मन ही मन कहने लगा—"अहा! इसमें जिन भवन की क्या ही सुन्दर विधि लिखा है, स्थालीपुलाक न्याय से

गुणारोप का आरोप किया जाय उसे स्थापनाचार्य कहते हैं चाहे वह चित्र पुस्तक या अक्षादि से निर्मित पंच परमेष्ठी स्थापना हो। उसे गुरु के समान ही आदर के साथ ऊँचे स्थान में स्थापित किया जाता है और उसी की साक्षी से धर्मक्रियाएं की जाती हैं।

१ जिस मन्दिर में आगमोक्त विधि—मर्यादा का पालन हो उसे विधिचैत्य और जहाँ आगम विरुद्ध आचरण व आशातनाएं होती हों उसे अविधिचैत्य कहते हैं।

२ थोड़े से नमूने से सारी वस्तु के भले बुरे का ज्ञान हो जाने को स्थालीपुलाक न्याय कहते हैं।

आचार्यश्री के अन्य उपदेश भी विशुद्ध एवं गम्भीर होंगे अतः मुझे अवश्य ही विधिमार्गानुगामी होना चाहिये। इस ग्रन्थ में केवल विषयों के अनायतन और जो पूजा सम्बन्धी शंका सन्देह रह जाते हैं अतः इन्हें पूछ कर निर्णय किया जाना आवश्यक है ऐसा विचार कर इसकर चच्चरी टिप्पणक को वापिस रख कर अपने घर चला आया।

इधर बागड़ देश में विराजित सूरि महाराज ने चारों नगरों की ओर प्रथित समस्त साधु साध्वियों को बुला कर सिद्धान्तों की वाचना दी एवं स्वदीक्षित जीवदेव मुनि को आचार्य पद दे जिनरक्षित शीलभद्र पं० स्थिरचन्द्र पण्डित ब्रह्मचन्द्र पं० विमलचन्द्र प० वरदत्त, भुवनचन्द्र वरनाग रामचन्द्र मणिभद्र इन मुनियों को वाचनाचार्य पद प्रदान किया श्रीमती जिनमती पूर्णश्री जिनश्री और ज्ञानश्री नामक पांच साध्वियों को महत्तरापद से विभूषित किया।

श्रीहरिसिंहाचार्यजी के शिष्य मुनिचन्द्र उपाध्याय की पूर्व प्रार्थनानुसार उनके योग्य शिष्य जयसिंह को चित्तौड़ में मुनीन्द्र (आचार्य) पद दिया और उनके शिष्य जयचन्द्र को पाटण में समवशरण की रचना के समक्ष सूरिपद दिया। सूरिजी ने जीवानन्द मुनि को भी उपाध्याय पद से अलंकृत किया।

इस प्रकार यथा योग्य पद प्रदान कर सब को भिन्न भिन्न स्थानों में विहार करने का आदेश देकर सूरि-महाराज अजमेर

पधारे। वहाँ पूर्व निश्चयानुसार पल्ले के समीप चैत्यगृह अम्बिका गृह के स्थान श्रावकों ने निर्माण करा रखे थे। सूरिजी ने शुभ मुहूर्त में जिनमन्दिर में वासक्षेप किया। श्रावकों ने उन मन्दिरों के उत्तुंग शिखरादि निर्माण कराके सुशोभित किया।

---

१ मुसलमानों के आक्रमणों द्वारा ये मन्दिर तोड़ फोड़ डाले गए। ढाई दिन के झोंपड़े के नाम से प्रसिद्ध स्थान में बने हुए जैन मन्दिर के भग्नावशेष अब भी विद्यमान हैं। इस स्थान के पास एक सती का मन्दिर भी है। संभव है कि पहले यहीं श्रीजिनदत्तसूरिप्रतिष्ठित जैन मन्दिर हो। श्री हरिसागरसूरि जी के कथनानुसार एक खण्डित मूर्ति का भग्नांश दादावाड़ी में पड़ा था जिसमें भी जिनदत्तसूरिजी का नामोल्लेख था।

देवगृह में गया। पादप्रक्षालनादि शुद्धि कर देववन्दन करने के पश्चात् श्रीदेवाचार्य की वन्दना की। आचार्य से क्षेम कुशल पूछने के अनन्तर देवधरने उनसे पूछा भगवन्! क्या देवगृह में रात्रि के समय स्त्री प्रवेश, प्रतिष्ठा बलिविधान आदि करना उचित है? देवाचार्यने चौंक कर सोचा इसके कानों में श्रीजिनदत्तसूरिजी का अमोघ मंत्र पड़ गया मालूम होता है। उन्होंने कहा श्रावक! रात्रि के समय स्त्री-प्रवेशादि संगत नहीं है देवधर ने पूछा—"तो आप निषेध क्यों नहीं करते आचार्य ने कहा—"श्रावकों मनुष्य ऐसा करते हैं, यह एक रूढ़ि पड़ गई है किस किस को रोका जाय! देवधर ने कहा—भगवन्! जिस देवगृह में जिनाज्ञा की अवहेलना होकर स्वेच्छाचार होता हो वह जिनगृह है या अनगृह? आचार्य ने कहा—जहां साक्षात् जिनेश्वरों का बिम्ब विराजमान हो वह जिनमन्दिर क्यों न कहा जाय! प्रत्युत्तर में देवधर ने कहा "आचार्य! इतना तो हम मूर्ख भी समझते हैं कि जहां पर जिसकी आज्ञा न मानी जाती हो वह उसका घर नहीं कहा जा सकता अतः जहां जिनाज्ञा पालन न हो उसे जिनमन्दिर क्यों कर कह सकते हैं? आप विद्वान हैं, पर इन सब बातों को जानते हुए भी प्रचलित अशुद्ध प्रवाह को रोकना तो दूर रहा किन्तु पुष्टि करते हैं। अतएव ऐसे गुरुओं को आज से मेरी अन्तिम वन्दना है। मैं तो जहां तीर्थंकरों की आज्ञा का यथावत् पालन होता है, उसी मार्ग का अनुसरण करूंगा। इतना कह कर

देवधर वहां से चला आया एवं अपने कुटुम्बियों के साथ अजमेर रवाना हुआ। चैत्यवासी आचार्य से हुए सम्भाषण का शुभ असर कुटुम्बी श्रावक भी विधिमार्ग में विशेष श्रद्धावान हुए।

देवधर अपने १५ कुटुम्बियों के साथ अजमेर पहुँचा। श्रीजिनदत्तसूरिजी के चरण-कमलों में भक्तिपूर्वक वन्दना करने के अनन्तर उसने व्याख्यान श्रवण किया एवं धार्मिक प्रश्न पूछ कर अपने सन्देह निवारण किए। संसार में सद्गुरु की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है। देवधर के हृदय में पूज्यश्री के उपदेशों से जादू का सा असर हुआ। उसकी उद्दण्डता तो सूरिजी के चमत्कार से ही शान्त हो गई थी। साक्षात् गुरु दर्शन से उसके हृदय का अज्ञानतिमिर दूर हो विधिमार्ग का विमल प्रकाश फैला। जिस प्रकार पारस लोहे को भी कंचन कर देता है उसी तरह सद्गुरु भी दुष्ट बुद्धि वाले मनुष्य को शिष्ट एवं विवेकी बना देते हैं।

देवधर ने भक्तिपूर्ण हृदय से सूरिजी को विक्रमपुर पधारने की नम्र अभ्यर्थना की। सूरिजी भी मास कल्प कर अजमेर के जिन बिम्ब, जिनालय, अम्बिका एवं गणधरादि की महोत्सव के साथ प्रतिष्ठा कर देवधर के साथ विक्रमपुर पधारे।

गणधर सार्द्धशतक बृहद्वृत्ति से ज्ञात होता है कि उस समय वहां (विक्रमपुर में) भूत प्रेतादि का बहुत उपद्रव था। सूरि महाराज ने उन सबको प्रतिबोधित कर समस्त उपद्रवों को

उपशान्ति की। पट्टावलियों में लिखा है कि जिस समय सूरिजी पधारे यहाँ के जैन मन्दिर के दरवाजे व्यन्तर देवों द्वारा बन्द किये हुए थे। सूरिजी ने आकर अपने तपोबल से उन देवों को आज्ञानुवर्ती बना कर दरवाजे खुलवा दिये। कई पट्टावलियों में लिखा है कि मन्दिर के दरवाजे सूरिजी के हस्तस्पर्श से खुल गए।

पट्टावलियों से स्पष्ट है कि उस समय वहाँ मारि रोग का बड़ा प्रकोप था। श्रावकों के अनुरोध से और जैनशासन की प्रभावना का महत्व जान सूरिजी ने सप्तस्मरण गुणनादि धार्मिक अनुष्ठान द्वारा उसे शान्त कर दिया। इसपर वहाँ के माहेश्वरी ब्राह्मणादि जैनेतरों ने भी अपने को इस उपद्रव से बचाने की प्रार्थना की। सूरिजी के उपदेश से उन्होंने यह स्वीकार किया कि हम इस प्रकार जीवितदान से उपकृत होकर हम जैन धर्म का आश्रय लेंगे। जो व्यक्ति ऐसा न करेगा वह अपनी संतान में से पुत्र पुत्री आपको शिष्य रूप में भेंट करेगा। सूरिजी के प्रभाव से सारे नगर एवं आसपास का मारि-रोगोपद्रव शान्त हो गया। संख्याबद्ध माहेश्वरी आदि कुटुम्बों ने जैन धर्म स्वीकार किया। यहाँ लगभग ५ शिष्य और ७ शिष्यायें

---

१ कई पट्टावलियों में लिखा है कि जिनदत्तसूरिजीने ओसियाँ में लक्षाधिक जैन बनाए। पर हमारे ख्याल से यह ओसियाँ में न होकर विक्रमपुर व उसके आसपास के मरुस्थल और सिन्धुमण्डल में आप श्री

दीक्षित हुए। संवत १५८२ की सूरिपरम्परा प्रशस्ति" में लिखा है कि:—

"यै मावो विक्रमाख्ये विपुलपुरवरेऽचारि मारि प्रबोध्य।
लोका माहेश्वरोयास्तदपि हि गुरुणा स्थापिता जैनधर्मे ॥ ४८ ॥
तस्मिन्नेव पुरेऽत्र सप्त गुणिते माधुर्यातिभ्यां पूजग।
एकस्यामपि दीक्षित ममसुवर्णैश्च कृपात्सास्यम ॥'
(खरतरगच्छ पट्टावली संग्रह पृ ४)

संवत १२७८ के लगभग बने हुए गुरुगण षट्पद में लिखा है—"भमयदाण जिण विन्नु मयम संघइ विक्रमपुरि'
(ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ)

इस प्रकार विक्रमपुर के रागापशास्ति द्वारा सूरिजी का सुयश चारों ओर व्याप्त हो गया। सूरिजी के इस प्रभावशाली चमत्कार से आसपास को जनता भी बहुत प्रभावित हुई। स्वामीय जनता अपना और अपने इष्ट जनों का जीवित दान पाकर बहुत ही आमन्त्रित हुई। भक्ति का स्रोत दिनों दिन वर्द्धमान गति से प्रवाहित होने लगा। इन्होंने चरम तीर्थकर

के प्रतिबोधित श्रावकों की संख्या होगी। प्राकृत प्रबन्धावली में लिखा है कि सूरिजी ने सिन्धु देश में विहार करके एक लाख अस्सी हजार घरों को प्रतिबोध देकर ओसवाल बनाया। सूरिजी के स्थापित ओसवाल गोत्रों का विस्तृत वर्णन महाजन वंश मुक्तावली आदि में देखना चाहिए। हमारे संग्रह की गोत्र सूची परिशिष्ट में दी जा रही है।

श्री महावीर भगवान की प्रतिष्ठा बड़े समारोह के साथ सूरिजी के करकमलों से करवाई। इस प्रकार धर्म की महान् प्रभावना करते हुए सूरि महाराज उच्चनगर पधारे। वहां पर भी उस समय भूत प्रेतादि का उपद्रव खूब जोरों से था। सूरिजी ने उन्हें प्रतिबोध देकर जनता को जैन धर्म की ओर आकर्षित किया। इस प्रकार मरु-मण्डल और सिन्धु देश में आपके असाधारण प्रभाव व उपदेशामृत से अनेकानेक व्यक्तियों ने जैन धर्म का प्रतिबोध पाया। जिनदत्तसूरिजी की एक प्राचीन स्तुति में आपके प्रतिबोधित श्रावकों की संख्या एक लाख बतलाई है यथा—

सूरि मन्त्र बलि कर मतिय साविय जिण चरणिन्द।
सावय साविय लक्ख इग पडिबोहिय जण वृन्द ॥

वहां से ग्रामानुग्राम विचर कर अनेक भव्यों को प्रतिबोध देते हुए सूरि-महाराज नगर होते हुए त्रिभुवनगिरि पधारे।

---

१ पीछे से यह मन्दिर तीर्थ रूप में प्रसिद्ध हो गया था। सं० ११४१ में श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने इस तीर्थ की वन्दना की थी। मिती फाल्गुन बदि ११ को वहां तीन आदि अनेक उत्सव होने का उल्लेख गुर्वावली में पाया जाता है। पता नहीं यह प्रतिमा कब तक वहां रही और अब कहां है।

२ यह नगर सिन्ध में है। यहां के राजपूत राज्य को संवत् १२३५ के लगभग सुलतान गोरी ने समाप्त कर दिया। यह किसी समय अच्छी समृद्धिशाली नगर था।

३ यह नगर जयपुर राज्य का प्राचीन ऐतिहासिक स्थान है, यहां लगभग (पुराने सिक्के प्राप्त हो चुके हैं। गुर्वावली में नगर के स्थान में नागर लिखा है और यह भी प्राचीन स्थान है।

पांचवां प्रकरण

महाराजा कुमारपाल एवं योगिनी प्रतिबोध

जब सूरि महाराज त्रिभुवनगिरि[1] पधारे उस समय वहां यादव वंशी महाराजा कुमारपाल[2] राज्य करते थे। सूरिजी की विद्वता और असाधारण प्रभाव का संवाद पाकर महाराजा सूरिजी के वन्दनार्थ आए। सूरिजी के अमृतमय उपदेश को सुनकर महाराजा का जैन धर्म के प्रति अनुराग हो गया और वे सूरिजी के परम भक्त हो गए। सूरिजी के उपदेश से

१ यह त्रिभुवनगिरि वर्तमान में तहनगढ़ नाम से प्रसिद्ध है और करौली से लगभग २४ मील उत्तर पूर्व में स्थित है। इसे यादव राजा त्रिभुवनपाल ने बसाया था। इसके सम्बन्ध में विशेष जानने के लिए श्रीयुत पं. दशरथ शर्मा एम. ए. का लेख 'भारतीय विद्या' वर्ष २ अंक १ में देखना चाहिए।

२ ये राजा कुमारपाल यादव वंश के थे। त्रिभुवनगिरि के दुर्भेद्य किले पर इन्होंने बहुत समय तक राज्य किया। श्रीजिनदत्तसूरिजी ने इन्हें अपने अंतिम जीवन में प्रतिबोधित किया था। मुहम्मद गोरी ने ई. ११९६ में त्रिभुवनगिरि का राज्य इन राजा कुमारपाल से ले लिया था। उनके हाथ से त्रिभुवनगिरि निकल जाने के लगभग १५ वर्ष पश्चात् इन्हीं के वंशज अर्जुनपाल ने करौली बसाई।

उन्होंने जैन मुनियों के सम्बन्ध में जो प्रतिबन्ध थे उठा लिये और वहाँ बहुत से जैन मुनियों का विहार होने लगा महाराजा के जैन धर्मानुरागी होने के कारण जनतामें भी जैन धर्म के प्रति आकर्षण बढ़ने लगा। वहाँ के श्रावक मधुराज को तो बात ही क्या ? वे लोग प्रति दिन नये नये महोत्सव और धार्मिक क्रियाओं को उत्साह पूर्वक करने लगे। उन्होंने बड़ी भक्ति के साथ श्री शान्तिनाथ भगवान का विधि जिनालय बनवा कर सूरि-महाराज के करकमलों से प्रतिष्ठा करवाई। महाराजा कुमारपाल के प्रतिबोध का वर्णन सं १२५८ के लगभग बने हुए 'गुरुगुण षट्पद' में इस प्रकार लिखा है —

> "जिणि पडिबोहिउ कुमरपालु नरवइ तिहुयणगिरि
> पंच सय मुणि जेम जीय वारिउ देसण करि"

(ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ)

जेसलमेर के ज्ञानभंडारस्थ ताड़पत्रीय प्रति के काष्ठफलक पर श्रीजिनदत्तसूरिजी की भक्ति करते हुए महाराजा कुमारपाल का चित्र विद्यमान है।

योगिनी प्रतिबोध —

एक बार सूरिमहाराज उज्जैन पधारे वहाँ आपने ६४

१ कई पट्टावलियों में योगिनी प्रतिबोध दिल्ली में और प्रबन्धावली में अजमेर लिखा है। पर प्राचीनता के नाते गणधर सार्द्धशतक बृहद्वृत्ति का उल्लेख हो विशेष प्रमाणित है

योगिनियों को प्रतिबोधित किया। जिसका वर्णन पट्टावलियों में इस प्रकार पाया जाता है—

सूरिजी ने ३॥ करोड़ मायाबीज (ह्रींकार) का जाप करना प्रारंभ किया था इसी बीच उन्हें ध्यान से विचलित करने और छलने के लिये ६४ योगिनियाँ सूरिजी के व्याख्यान में आई। यह बात अपने ज्ञानबल एवं अपने मन्त्र देव द्वारा पहिले से ही जान कर सूरि महाराज ने श्रावकों को संकेत कर दिया था कि इस प्रकार व्याख्यान में नई श्राविकाएँ आवेंगी उन्हें पाटों पर बठाने की व्यवस्था कर देना श्रावकों ने वैसा ही किया योगिनियाँ आकर पट्टों पर बैठ गई सूरि महाराज के योग बल से वे वहीं स्थंभित हो गई और व्याख्यान समाप्त होने पर भी उठ कर जाने में असमर्थ रहीं। सूरिजी ने कहा – व्याख्यान समाप्त हो गया सब लोग चले गये तुम लोग भी अवसर देखो। इससे वह बहुत लज्जित हुई और क्षमा-याचना पूर्वक कहने लगीं हम तो आपको छलने आई थीं पर आपके अचिन्त्य प्रभाव से हम लोग स्वयं ही छली गई।" इस प्रकार योगिनियाँ सम्मानित होकर सूरिजी महाराजका भविष्य में चमत्कार में साहाय्य करने का वचन दे स्वस्थान लौट गई।

---

१ कई पट्टावलियों में उनके सम्मुख होकर ७ वर देने का उल्लेख पाया जाता है और उन्होंने एक बात यह भी कही कि मरुस्थल, दिल्ली उच्च व अजमेर आदि योगिनीपीठों में आपके पट्टधर न जावें यदि जावें

अत्यन्त तेजस्वी श्रीजिनदत्तसूरिजी का लोकोत्तर प्रभाव देख कर चैत्यवासियों में खलबली मच गई। विधि-चैत्यों का

तो रात्रि में न रहें। पर हमारे ख्याल से यह बात दिल्ली में श्री जिनचंद्र सूरिजी के योगिनी के छल से (पट्टावली के कथनानुसार) स्वर्गवास हो जाने के कारण प्रसिद्धि में आई ज्ञात होती है। सूरिजी ने अपने ज्ञानबल से अपने शिष्य मणिधारीजी को दिल्ली में जाने पर अशुभ घटना का योग जान कर ही उन्हें दिल्ली जाने का निषेध किया था यह बात जिनपालो-पाध्याय की गुर्वावली से प्रमाणित है। पट्टावलियों की इस पट्टधरों के योगिनी पीठों में न जाने की बात इसलिए भी असंगत मालूम होती है कि वहां पीछे के बहुत से आचार्य अनेक बार गये हैं। यदि इस पट्टधरों को वहां जाना निषिद्ध होता तो फिर उनका जाना संभव न था। ७ वर किसने दिए? इस विषय में पट्टावलियों में मतभेद है। प्रबन्धावली के कथनानुसार ये वरदान श्री जिनदत्तसूरिजी द्वारा आराधना प्राप्त स्वर्गवासी कच्छो-लिकाचार्य ने दिये थे। कई पट्टावलियों में ७ वर माणिभद्रादि यक्ष-प्रमुख देवों ने दिए थे, लिखा है। कई पट्टावलियों में योगिनी और इन देवों के मिलन १ वर देने और उनके वशीभूत होने से ७ विधान (अवश्यक कर्तव्य) बतलाए लिखा है। ये सात वर और विधान इस प्रकार हैं जो कि विभिन्न पट्टावलियों में थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ भी पाये जाते हैं।

७ वर—

१ खरतर साधु प्रायः मूर्ख न होगा।

२ श्राविकाओं को ऋतुधर्म न होगा (१)

सुविहित मार्ग में आते देख उनको आन्तरिक दुःख हुआ, अतः उन लोगों का सूरिजी से विरोधी होना स्वाभाविक ही था।

एक बार सूरि महाराज चित्तौड़ पधारे नगर प्रवेश के समय विघ्नसन्तोषी लोगों ने अपशकुन करने के लिए काले साँप को रस्सी से बाँध कर सूरिजी के सम्मुख छोड़ दिया श्रावक लोग इसे अपशकुन समझ कर गीत वाजित्र बंद कर किंकर्तव्य विमूढ़ से हो गए। तब ग्राम में सूर्य्य के सदृश सूरि महाराज फरमाया—"उदास क्यों हो रहे हो? दुष्ट अभिप्राय वाले अपने किये का फल स्वयं पा लेंगे अपने लिये तो यह शकुन अच्छा ही है, कोई विचार मत करो।" कुछ आगे जाने प विरोधियों ने एक मस्तानी को सूरिजीके सम्मुख भेजी व पूज्यश्री का मार्ग रोक कर खड़ी हो गई। सूरिजीने कहा "क्यों भाई मस्ते? उसने उत्तर दिया—"मत्थए वाणुआर सुओ" मृदु हास्य पूर्वक प्रतिभाशाली पूज्यश्रीने कहा "पच्चाहरा हेम दुब्भिमा?[1]। यह सुनकर वह निरुत्तर होकर चली गई। पूज्यश्री बड़े समारोह के साथ नगर में प्रविष्ट हुए। यहाँ पर जिनबिम्ब प्रतिष्ठा सम्बन्धी बहुत से उत्सवादि हुए।

---

१ सूरिजी ने पहले कहा—हम मस्ती भाई-मस्ती का अर्थ मस्ती और काम होता है। जब औरत ने सूरिजी की बात का उल्टा बात अर्थ में लिया कि वस्तुस्थिति-वृद्धावस्था ने (तुम्हारे लिए) मस्ती-काम होता है तब पूज्यश्री ने काम अर्थ को स्वीकारते हुए फरमाया कि—अच्छा! बड़ी काम ने तुम्हारा क्या काम किया? इस प्रश्न पर वह औरत स्वयं लज्जित होकर निरुत्तर हो गई।

छट्ठा-प्रकरण

युगप्रधान पद प्राप्ति और ग्रंथ रचना

उस समय सब गच्छ वाले अपने अपने आचार्यों को युगप्रधान कहते थे तब भाग्यसम्पन्न सात्विक शिरोमणि रमार्दंग सुश्रावक नागदेव[1] ने वर्तमान काल में युगप्रधान आचार्य वास्तव में कौन है ? इसका निर्णय करने के लिए उज्जयन्त (गिरनार) शिखर पर जाकर तपश्चर्या प्रारम्भ की। तथा तीन दिन तक उपवास[2] करने पर उसके सत्व से आकर्षित होकर अम्बिका देवी प्रकट हुई। उसका अभिप्राय जानकर प्रसन्नता पूर्वक उसके हाथ में प्रशस्त प्रशस्ति रूप युगप्रधान का नाम लिख दिया। देवीने नागदेवसे यह भी बतला दिया कि जो इन अक्षरों को प्रकट कर सके उन्हीं को युगप्रधान आचार्य जानना।

---

1 महोपाध्याय पुण्यसागर व सूरप्रभगणिकृत श्रीजिनदत्तसूरिस्तुति में नागदेव के स्थान पर अंबड नाम आता है पर गणधर सार्द्धशतक इत्यादि प्राचीन ग्रन्थों में नागदेव होने से यही प्रामाणिक ज्ञात होता है।

2 प्रभावकाली गुरुगुण वर्णन षट्पद व अन्य पट्टावलियों में ३ उपवास करना लिखा है। संवत् १४९ के लगभग श्री जयसागरोपाध्याय रचित गुरु पारतंत्र्य वृत्ति में ७ उपवासों का उल्लेख है।

नागदेव उन अक्षरों को पढ़ाने के लिए देशान्तरों परिभ्रमण करने लगा। पर बहुत से आचार्यों को हाथ दिखाने पर भी कोई न पढ़ सका, क्या सूर्य विकाशी कमल कभी चन्द्र के बिना विकसित हो सकता है? इस प्रकार भ्रमण करते हुए वह पाटण (अणहिलपुर) में सूरिजीके समीप पहुंचा। सूरि महाराज ने उसे स्वप्नसारनक देख कर स्वयं न पढ़ा और वासक्षेप डाल कर अक्षर प्रकट कर दिये। शिष्य ने सब के सम्मुख उत्सुकता पूर्वक नागदेवके हाथ पर लिखी हुई गुरु स्तुति का पाठ कर सुनाया—

> दासानुदासा इव सर्व देवा यदीय पादाब्जतले लुठन्ति।
> मरुस्थली कल्पतरुः सजीयात युगप्रधानो जिनदत्तसूरि ॥१॥

अर्थात—जिनके चरण कमलों में समस्त देव दासानुदास की भाँति लोटते हैं और मारवाड़ के रेगिस्तान में कल्पवृक्ष के समान हैं। ऐसे वे युगप्रधान (युग में प्रधान) श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज जयवन्त वर्तो।

नागदेवके हर्ष का पारावार न रहा वह जिस कल्पवृक्ष की खोज में था मिल जानेसे सूरिजी का वन्दना कर विशेष भक्त हो गया। इस आश्चर्यजनक घटना से सूरि महाराजका सर्वत्र इस प्रकार युगप्रधान पद से प्रसिद्धि हो गई। इस घटना को खरतर गुरु गुण वर्णन छप्पय में इस प्रकार लिखा है —

> जिनदत्त मंदह सुपहू जो मारहम्मि जुग पवरो।
> अम्बाएवि पसाया विन्नाउ नागदेवेन ॥१॥

स्पष्ट झलक रहा है। आप श्री की कृतियों की सूची इस प्रकार है —

स्तुति परक रचनाएं

१ गणधरसार्द्धशतक प्राकृत गा० १५०

---

१ इस पर सं० २९५ में सुमति गणि ने १२१०० श्लोक प्रमाण बृहद् वृत्ति बनाई जिसकी प्रतिएं हमारे संग्रह में और बृहद्ज्ञानभण्डारादि में विद्यमान है। इसी बृहद्वृत्ति के आधार से १४ वीं शती में सर्वराजगणि ने ११०० श्लोक परिमाण की संक्षिप्त वृत्ति बनाई जिसकी प्रतियां जयपुर संस्कृत कालेज री जयपुर भंडार राय बहादुर जैन म्यूजियम कलकत्ता आदि में है। बृहद्वृत्ति के आधार से १ अन्य वृत्ति भी सं० १२४६ पौष शुक्ला ७ को जेसलमेर में २१७१ श्लोक परिमाण पद्ममन्दिर गणि ने बनाई जिसकी प्रति ६ पत्रों की जयपुर भंडार में उपलब्ध है। परवर्ती शती में चारित्रसिंह गणिने वर्द्धमानसूरिजी से श्रीजिनदत्तसूरिजी तक के जीवनचरित्र को बृहद्वृत्ति से अलग उद्धृत कर लिया जिससे चरित्रसिंहगणि कृत कहलाने लगा। इनमेंसे सर्वराजगणि कृत लघुवृत्ति हीरालाल हंसराज और चारित्रसिंह उद्धृत अन्तर्गत प्रकरण मूल व भाषा सहित श्रीजिनदत्तसूरि ज्ञानभण्डार-सूरत से प्रकाशित हो गया है। [illegible] में मूल संस्कृत छाया सह और मूल छाया व भाषानुवाद एवं चारित्रसिंह गणि उद्धृत आचार्य चरित्रों के गुर्जरानुवाद के साथ "श्रीगणधर सार्द्धशतकम्" नाम से श्रीजिन-हरिसागरसूरि ज्ञानभंडार लोहावट से प्रकाशित हो चुका है। पद्ममन्दिर गणी वृत्ति को उपाध्याय श्रीसुखसागरजी महाराज ने छपा दी है एवं बृहद्वृत्तिको छपा रहे हैं।

६ श्रुतस्तव[१]	प्रा०	गा	२७
७ अजित शान्ति स्तोत्र	संस्कृत	गा०	५
८ पार्श्वनाथ मन्त्रगर्भित स्तोत्र	प्रा०	गा	३७
९ महाप्रभावक स्तोत्र	प्रा	गा	३
१० चक्रेश्वरी स्तोत्र	संस्कृत	गा	१०
११ योगिनी स्तोत्र[५]			
१२ सर्वजिन स्तुति[६]	संस्कृत	गा०	४
१३ वीर स्तुति[७]	संस्कृत	गा०	४

१ जेसलमेर भण्डार की ताड़पत्रीय प्रति में २७ पद्यों का यह श्रुत छाहिल के नामोल्लेख सह स्तुतिरूप में है।

२ इसकी दो प्रतियाँ हमारे संग्रह में है। जैन स्तोत्र सन्दोह भा० १ में प्रकाशित भी हो गया है।

३ ४ इसकी प्रतियाँ बीकानेर बृहद्ज्ञानभण्डार व श्रीजिनचारित्रसूरिजी के भण्डार में है। नं० ४ के स्तोत्र सन्दोह भा० में पूर्णकलश गणि की वृत्तियुक्त में यह स्तोत्र छपा है पर हमने १ वीं शताब्दी की १ अन्य टिप्पण वाली प्रति में भी इसके कर्त्ता जिनदत्तसूरिजी लिखा देखा है।

५ इसकी नकल हमारे पास है।

६ यह जार्ल्सग्रीगच्छ भण्डार सूरत के नं० १७ में प्रति नं० १४ में है।

७ इसकी नकल हमारे पास है।

८ यह हमारे प्रकाशित अभयरत्नसार में व रत्नसागरादि में छप गया है।

२६ आरात्रिक वृत्तानि गा० ११
२७ अध्यात्म गीतानि

श्रीजिनदत्तसूरिजी के नाम से बावन तोला पाव रत्तीकल्प-हेमकल्प" एस० के० कोटेचा धूलिया से प्रकाशित सिद्ध योसायंत्र आदि के पृ १९० में छपा है पर हमें इसके सूरिजी की रचना होने में सन्देह है। योगानुशासन वृत्ति के संशोधक जिनदत्तसूरिजी चरित्रनायक सूरिजी को कहा जाता है, यह ठीक नहीं है। क्योंकि एक तो उसमें उनका विशेषण सत्पुर निवासी लिखा है। दूसरा उसका रचना समय संवत् ११५२ है जब कि इन्हें आचार्य पद हो नहीं हुआ था इसी प्रकार सं ११६९ में वीरदेव रचित पिण्डनियुक्ति वृत्ति का संशोधन श्रीजिनदत्त सूरि ने पाटण में किया ऐसा उल्लेख जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास पृ० २२८ में लिखा है वे जिनदत्तसूरि भी चरित्रनायक से भिन्न होने संभव है।

इसके अतिरिक्त यत्तपतसिंह भणसाली लिखित श्रीजिनदत्तसूरि जीवनचरित्र (सं १९७२ जैनसाहित्यप्रचारक मंडल दिल्ली से प्रकाशित) में पदस्थापन विधि प्रबोधोदय

१ इसकी नकल हमारे संग्रह में है।

२ जेसलमेर भण्डार सूची में इसका पत्र ११ श्लोक सं ० के होने का उल्लेख है। पर उक्त प्रति को भलीभांति देखने पर भी यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ।

आम्बारसमदीपिका और पट्टावली आपके रचित होने का उल्लेख किया है। इसीके अनुसार शेरसिंहजी गोठवंशी सम्पादित श्रीजिनदत्तसूरि चरित्र (सं १९८०) और जिनदत्तसूरि ज्ञान भंडार बम्बई से प्रकाशित शासनप्रभावक श्रीजिनदत्तसूरिजी के जीवनचरित्र में भी इन ग्रन्थों का उल्लेख है। पर ये ग्रन्थ सूरिजी के रचित होने का कोई प्रमाण नहीं। इनमें प्रबोधोदय तो जिनपतिसूरिजी के वादस्थल का ही नाम है पद स्थापना पद व्यवस्था का ही अपर नाम होगा एवं पट्टावली कवि पल्ह कृत "श्रीजिनदत्तसूरि स्तुति" ही होगी। शेरसिंहजी सम्पादित चरित्र में इनके अतिरिक्त शकुनशास्त्र भी आपकी रचनाओं में लिखा है व सूरिजी के नाम से वह प्रकाशित भी हो चुका है पर वह विवेकविलास के कर्त्ता वायड गच्छीय श्री जिनदत्तसूरिजी की कृति है।

सातवाँ प्रकरण

स्वर्गवास और शिष्य परम्परा

सूरि महाराज ने अपने धर्मविहार द्वारा बहुत से ग्राम नगरों को पवित्र किया, हजारों की संख्या में जैनेतरों को जैन बनाया, राजाओं को प्रतिबोध दिया, ग्रन्थ रचना द्वारा साहित्य सेवा की, चैत्यवास का उन्मूलन कर सुविहित मार्ग का प्रचार किया, नाना स्थानों में विधि-चैत्यों की प्रतिष्ठा की। इन सब बातों का उल्लेख हम पीछे के प्रकरणों में कर चुके हैं। आपके द्वारा की हुई प्रतिष्ठाओं में से रुद्रपल्ली के श्री ऋषभदेव और पार्श्वनाथ, अजमेर के पार्श्वनाथ आदि, विक्रमपुर की महावीर प्रतिमा, त्रिभुवनगिरि के शांतिनाथ जिनालय एवं चित्तौड़ की प्रतिष्ठा सूरिजी के करकमलों से सम्पन्न होने का उल्लेख पूर्व किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त धारानगर और गणपद्रादि स्थानों में भी आप श्री ने महावीर प्रभु पार्श्वनाथ शान्तिनाथ और अजितनाथ स्वामी के बिम्ब एवं जिनालयों की प्रतिष्ठा की थी। बृहद् गुर्वावली में आपके प्रतिष्ठित मड्डाहड में पार्श्व जिनालय

---

१ यहाँ पर श्रीजिनवल्लभसूरिजी प्रतिष्ठित पार्श्वनाथ भगवान का मन्दिर था जिसका जीर्णोद्धार श्रीजिनप्रबोधसूरिजी के पट्टधर पर बैठ [illegible] ने करवा कर चित्तौड़ में प्रतिष्ठित ध्वजदंड का (सं. १३३५ फाल्गुन सुदी १० को) आरोपण किया। गुर्वावली के उल्लेखानुसार यह स्थान चित्तौड़ के पास ही होना चाहिए।

मरुकोट में नवफणा पार्श्वनाथ एवं कन्यानयन[1] में महावीर स्वामी के विधिचैत्यों का भी उल्लेख पाया जाता है।

सूरि महाराज के करकमलों से हजारों आत्मार्थियों ने भागवती दीक्षा ग्रहण की थी। पट्टावलियों में आपके अन्तेवासी १००० शिष्य और १५ ० शिष्याएं होने का उल्लेख पाया जाता है जिनमें से कतिपय दीक्षाओं का वर्णन आगे आ चुका है। आप श्री के प्रधान पट्टधर शिष्य श्री जिनचन्द्रसूरिजी की दीक्षा सं० १२०३ के फाल्गुन शुक्ला ९ को अजमेर में हुई थी। इनके पिता का नाम साह रासल और माता का नाम देल्हणदे था। इनकी असाधारण प्रतिभा देखकर सूरि महाराज ने इन्हें

---

१ यहां के अलौकिक पार्श्वनाथ का गुर्वावली में महातीर्थ रूप से उल्लेख किया है। इस के साथ यहां की यात्रा (सं० ११८५ में) श्रीजिनचन्द्र सूरिजी और उनके पट्टधर श्रीजिनपतिसूरिजी ने (सं० १ ८ में) की थी। मणिधारीजी रचित गुरुस्तुति के अनुसार पार्श्वनाथ प्रतिमा के ९ फण का प्रचार एवं पार्श्वनाथ आरती उतारने की मर्यादा आपसे ही प्रचलित हुई थी।

२ इस स्थान के सम्बन्ध में हमने अपने 'शासन प्रभावक श्रीजिनप्रभ सूरि' निबन्ध में विशेष विचार किया है जो कि 'विधिप्रपा' में प्रकाशित हुआ है। यहां के श्रीमहावीर भगवान की यात्रा (सं० ११३५-३८ में) श्रीजिनचन्द्रसूरिजी और श्रीजिनकुशलसूरिजी (सं० १३८ में) करने का उल्लेख पाया जाता है। यह स्थान अभी हांसी के निकटवर्ती कन्नाणा या कनौद में से एक होना चाहिए।

प्रदान कर युवराज पद से विभूषित किया। आप सपुत्रवयस्क हो पर भी बड़े विद्वान एवं गुरुभक्त थे। श्री जिनदत्तसूरिजी ने वहाँ विहार करने पर अशुभ योग देखकर पहले से ही वहाँ जाने का निषेध कर दिया था। पर भवितव्यता से राजा मदनपाल के अत्यन्त आग्रहवश वे दिल्ली गये और वहां सं० १२२३ भा० व० १४ को स्वर्गवास हो गया। श्रीजिनदत्तसूरिजी के भविष्यज्ञान का यह ज्वलन्त उदाहरण है।

आपके भक्त श्रावकों में से भी कई श्रावक श्राविकाएं जैन धर्म के विशेष अनुरागी एवं जानकार थे जिनमें से कई श्रावकों के लिए सूरिजी ने ग्रन्थ[1] बनाए और कई श्रावकों

---

१ जेसलमेर भाण्डागारीय ताड़पत्रीय प्रति (नं० १९१) की जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति की पुष्पिका में श्रीजिनदत्तसूरिजी के भक्त श्रावक और उसके वंशजों का उल्लेख है। ये श्रावक श्रीश्रीमाल कुलके थे। इनके वंशज सोमचन्द और राजसिंह के धर्मकृत्यों का वर्णन हमारी "दादा जिनकुशलसूरि" पुस्तक में देखना चाहिए। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिवृत्ति भी इसी राजसिंह श्रावक के लिखाई हुई है।

२ सुमतिगणि उपाध्याय रचित कालस्वरूपकुलक वृत्ति के गा० २५ की टीका में पाटण के मुख्य श्रावक भाहिल के श्रीजिनदत्तसूरिजी को अपने धर्मगुरु रूप में स्वीकार करने का उल्लेख है। वृत्ति के अनुसार भाहिल के पुत्र धनदेव आभू आसिग और संभव के पिता के लिए "कालस्वरूप कुलक" रच कर सुविहा न भेजा था। इसी प्रकार श्रीउज्जयिनी (भटिका) निवासी किसी प्रमुख खरतर श्राविका के सन्देहनिवारणार्थ सन्देहदोलावली के रचे जाने का उल्लेख प्रबोधचन्द्र रचित वृत्ति में है। विक्रमपुर के श्रावकों को चर्चरीटिप्पनक रचकर दो बार भेजने का उल्लेख आगे आ ही चुका है।

श्रीजिनदत्तसूरिजी की स्मारक छतरी, अजमेर

ने इसका जीर्णोद्धार करवा कर स्तूप को नयनाभिराम और विशाल बनवाया।

इसी प्रकार सं० १३१० मिति वैशाख सुदा १३ शनिवार स्वाति नक्षत्र में जावालर में सेठ हरिपाल कारित एवं सं १३१७ मिती वैशाख सुदा १० को हरिपाल कुमारपाल कारित श्रीजिनदत्तसूरि मूर्ति की प्रतिष्ठा श्रीजिनरत्नसूरिजी ने की। सं १३३४ मिती वैशाख वदि ५ को भीमपल्ली में सं १३३ वैशाख कृष्ण ६ को वरडिया ग्राम में आपश्री की मूर्तियों की प्रतिष्ठा श्रीजिनप्रबोधसूरिजी ने की थी। इनमें से एक मूर्ति अब भी पाटण में विद्यमान है जिसका फोटो 'अपभ्रंश काव्यत्रयी' में छपा है।

सं १३८ मिति वैशाख वदि क दिन पाटण म स्वापुरीय ग्राम श्रीजिनदत्तसूरिमूर्ति की प्रतिष्ठा श्रीजिनकुशलसूरिजी ने की। इसके पश्चात् अनेकानेक गुरुमूर्तियें और चरणपादुकाओं की प्रतिष्ठाएं हुईं और अद्यावधि होती जा रही है। भारतवर्ष के प्रमुख नगर-ग्रामों में प्रायः सैकड़ों स्थानों में आपकी मूर्तियें एवं चरणपादुकाएं बड़े भक्ति भाव से पूजी जाती हैं। भक्तजनों

---

१ सं. १३११ से सं. १३ १ तक की प्रतिष्ठित मूर्तियों का उल्लेख गुर्वावली के आधार से किया गया है। जिसका सं. १३ ५ तक का अंश जिनपालोपाध्याय रचित है और सं. १३ ५ के पश्चात् का वर्णन तत्कालीन लिखा हुआ है। यह ग्रन्थ मुनि जिनविजयजी के सम्पादन में सिंघी जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित हो रहा है। इसके महत्त्व के सम्बन्ध में हमारा लेख 'भारतीय विद्या' वर्ष १ अंक ४ में देखना चाहिए।

के मनोवाञ्छित पूर्ण करने में कल्पवृक्ष के समान श्रीजिनदत्त सूरिजी यह दादा साहब के नाम से जगत में प्रसिद्ध हैं।

शिष्य परम्परा

हम आगे लिख चुके हैं कि युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरिजी के ? शिष्य व १५०० शिष्याएं होने का उल्लेख पट्टावलियों में है। पट्टधर परम्परा के अनुसार खरतरगच्छ की जितनी भी शाखाएं विद्यमान हैं वे सब आप ही की शिष्य परम्परा में हैं। और उसके अतिरिक्त श्रीजिनदत्तसूरिजी की परम्परा के नाम से संबोधित शाखा भी अभी तक विद्यमान है जिसका यहां परिचय कराया जाता है इस परम्परा के यतिगण जिनभद्रसूरि शाखा की लाकासर गद्दी के आज्ञानुवर्ती हैं

श्रीजिनदत्तसूरिजी से श्री शीलचंद्र गणि तक की परम्परा के नाम अज्ञात हैं। पंद्रहवीं शताब्दी के प्रभावक आचार्य श्रीजिन भद्रसूरिजी के विद्यागुरु वा० शीलचन्द्र गणि थे। इसका उल्लेख पं समयप्रभ गणि रचित श्रीजिनभद्रसूरि रास में इसप्रकार है —

"शीलचन्द्र गुरु पासि आगम लक्षण तर्क पुराण रस्
आगइ सवि परिमाणु।
श्री जिन शासन वर गायण उदयल अभिनव भाणु ॥ ७॥

इनके शिष्य वा रत्नमूर्ति गणि के शिष्य मेरुसुन्दरो पाध्याय १६ वीं शती के पूर्वार्द्ध के सुप्रसिद्ध बालावबोधकार हैं इन्होंने जनसाधारण में उपयोगी ग्रन्थों का विशेष प्रचार होने के लिए १५ ग्रन्थों का सरस भाषा-टीका बनाई आपका गद्य

भाषाभाषामें रचित प्रश्नोत्तर ग्रन्थ भी आपके शास्त्रीय ज्ञान और गुरु आम्नाय का परिचायक है। हमें अभी तक आपके जितने ग्रन्थों का पता चला है, उनकी सूची दी जाती है —

(१) शीलोपदेशमाला बालावबोध (संवत् १५९५ मांडवगढ़ में ओसवाल धनराज की अभ्यर्थना से रचित), (२) पुष्पमाला बालावबोध (सं १५२८ पूर्व) (३) षडावश्यक बालावबोध (सं १५०१ में स ५ मांडवगढ़ संघ की अभ्यर्थना से) (४) कर्पूरप्रकर बालावबोध सं० १५३४ से पूर्व), (५) योग शास्त्र बालावबोध (६) पंचनिग्रन्थी बालावबोध (७) अजित-शांतिबालावबोध (८) शत्रुंजयस्तवन बाला (सं १५१८ इसकी प्रति भंडारकर इन्स्टीच्यूट पूना में है। (९) भावारिवारण बाला (१०) वृत्तरत्नाकर बाला (वृद्धिचन्द्रजी गणेश संग्रह सर कारराजर में इसकी प्रति है) (११) संबोधसत्तरी बाला (डूंगरजी यति भंडार जैसलमेर) (१२) श्रावक प्रतिक्रमण बाला (१३) कल्पप्रकरण बाला (१४) योगप्रकाश बाला (१५) अंजना सुन्दरी कथा (सिद्धक्षेत्र साहित्यमंदिर पालीताना) (१६) प्रश्नोत्तर ग्रन्थ (महिमाभक्ति भंडार), (१७) भावारिवारण वृत्ति पत्र ? (वृद्धिचंद्रजी भं जैसलमेर), (१८) षष्ठिशतक बाला ।

मेरुसुन्दरोपाध्याय के उपदेश से सं १५ ? में जैसलमेर में पट्टिका स्थापित हुई जिसका लेख नाहरजी के लेखांक २१५४ में प्रकाशित है। उनके शिष्य शान्तिमन्दिर के शिष्य हर्षप्रिय गणि हुए जिनकी रचित शाश्वत जिनवाणी उपलब्ध है। उनके

(६) श्रीहरास प्रबन्ध (मूठापुर मेहता के श्रापड़ा कपूरचन्द के आग्रह से) ( ) उत्तराध्ययन गीत (सं १६७५ श्रा व ८ गु) (८) रसमञ्जरी (हिन्दी गा १ ७) (६) शिक्षा छत्तीसी (१) जीवविचार टबा० ।

शिवनिधानजी के दूसरे शिष्य वा० मतिसिंह के शिष्य रत्नत्रय थे जिसका प्रसिद्ध नाम ममोहरजी था। फतहपुर में सं १७१३ में बनी हुई इनकी छतरी विद्यमान है। इनके शिष्य (१) वा दयातिलक, (२) रत्नवद्धन (२) वा भाग्यवर्द्धन थे। जिन में दयातिलकजी को निम्नोक्त कृतियाँ उपलब्ध हैं

१) धन्नारास सं १७३० कार्तिक) (२) विक्रमादित्य चौ (३) अहिछत्रा स्त गा २६ (४) सीमन्धर स्त गा १६ (५) पञ्चमी तपाधिकारे मवदत्त भविष्या चौ (सं १७४१ श्वे गु ११ फतहपुर, पत्र २ से १५ श्रीपूज्यजी सं) (६) संखेश्वरपार्श्व स्त गा ६ (७) नेमिनाथ स्तवन गा ६, (८) पार्श्वनाथजी के ३ स्तवनादि। इनके शिष्य दीपचन्द्र का (१) लंघनपथ्य निर्णय (२) बालतंत्र भाषावचनिका हिन्दीका उपलब्ध है।

रत्नत्रय के द्वितीय शिष्य रत्नवद्धन की ऋषभदत्त चौ सं १७३३ विजयादशमी संखावतो में रचित उपलब्ध है। तृतीयशिष्य वा० भाग्यवर्द्धन के शिष्य ज्ञानसमुद्र के शिष्य ज्ञानोदय (जो सं १७६१ में विद्यमा- थे) के शिष्य ज्ञाननिधान थे जिनके शिष्य श्रीमसुख [illegible] राजस्थानी टबा (सं १८९ भा [illegible]

लिम रचित) (२) वैद्यजीवन टबा ग्रन्थ उपलब्ध है। इनकी छतरी सं० १८५८ में फतहपुर में आपके शिष्य चिमनीरामजी ने बनवाई थी।

चैनसुखजी के दो शिष्यों का पता चला है जिनमें से चिमनीरामजी (चारित्रसमुद्र) के शिष्य ज्ञानचन्द्र शि० गजानन्द जी के शिष्य भैरवचन्द्रजी हुए जिनकी दीक्षा सं० १९३३ और स्वर्गवास सं० १९६६ आसोज सु० १२ को प्रातःकाल ५१ वर्ष हुआ। इनके शिष्य यति विष्णुचन्द्रजी का फतेपुर में हाल ही में स्वर्गवास हुआ है। इनके शिष्य मुद्धिकरणजी ह० वर्तमान गुरु शिष्य बड़े सज्जन और कुशल वैद्य हैं। थपमु व यति ज्ञानचन्द्र जी के शिष्य ज्ञानविशालजी और उनके शिष्य जयमाणिक्य थे। चैनसुखजी के द्वितीय शिष्य बखतमलजी थे जिनके शिष्य हरखामल (हीरसमुद्र) के शिष्य (१) अमरचन्द्र (अमृतविशाल और (२) पद्मचन्द्र थे। अमृतविशालजी के शिष्य (१) इन्द्रकीर्ति और (२) मानचन्द्र थे। जिनके शिष्य रूपमचन्द्र सं० १९९४ तक विद्यमान थे। इन्द्रकीर्ति के शिष्य आगमसार शि० हुकमचन्द शि० रामकुमारजी के शिष्य यति गंगाधरजी लछमनगढ़ में विद्यमान हैं।

आठवां प्रकरण

ग्रन्थान्तरों की विशेष बातें

श्री जिनदत्तसूरिजी से सम्बन्धित जिन घटनाओं का उल्लेख इससे पूर्व आया है उन सब का मुख्य आधार "गणधर सार्द्धशतक बृहद्वृत्ति" है जिसे सं० १२९५ में श्रीजिनपतिसूरिजी के शिष्य पं० सुमतिगणि ने वाचनाचार्य पूर्णदेव गणि और वृद्ध सम्प्रदाय से ज्ञात कर रची थी। प्रमुखतया जिन घटनाओं का सूक्ष्म सूचन उपयुक्त बृहद्वृत्ति में मिलता है और जिनका विस्तार पट्टावलियों में पाया जाता है उनका भी निर्देश यथा स्थान किया जा चुका है। अब पूर्व प्रकरणों में जिन घटनाओं का उल्लेख नहीं किया जा सका है और बृहद्वृत्ति गुर्वावली आदि बाद के साहित्य-ग्रन्थों एवं पट्टावलियों में पाया जाता है उनका संक्षेप में सार इस प्रकरण में दिया जा रहा है। महापुरुषों के जीवन चरित्रों में प्रायः कई अलौकिक घटनाओं का समावेश पाया जाता है जो स्वाभाविक है। उनमें से किस

---

१ इन्होंने सं० १२१७ फाल्गुन शुक्ल १ को भीमपल्ली के वीर जिनालय में श्रीजिनपतिसूरिजी आदि के साथ मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरिजी से दीक्षा ली थी। सं० १२४५ में लवणखेटक में श्रीजिनपतिसूरिजी ने इन्हें वाचनाचार्य पद प्रदान किया था।

घटना में ऐतिहासिक तथ्य कितना है इसका निर्णय करना टेढ़ी खीर है। श्रीजिनदत्तसूरिजी के जीवनी में भी कई चमत्कारिक घटनाओं का सम्मिश्रण पाया जाता है उनके तथ्य का निर्णय विशेषज्ञों एवं पाठकों पर छोड़ कर हम यहाँ उन सारी घटनाओं का संग्रह मात्र कर देते हैं।

(१) प्रथमानुयोग पुस्तक प्राप्ति—

सूरि महाराज के ज्ञान ध्यान चारित्रादि गुण एवं पुण्यातिशय से शासन देवता ने प्रसन्न होकर उज्जैन नगर के महाकाल प्रासाद के मध्यवर्ती शिलापट्ट में गुप्तरूप से रखी हुई अद्भुत प्रथमानुयोग सिद्धान्त पुस्तिका सूरिजी को प्रदान की। यह पुस्तक दशपूर्वधर श्री कालिकसूरिजी रचित एवं श्रीसिद्धसेन दिवाकर द्वारा पठित[1] था। इस पुस्तक के सम्यक् परिज्ञान से सूरिजी के महान प्रभाव की सब ओर में प्रसिद्धि हो गई।

---

१ समवायांग सूत्र में अनुयोग दो प्रकार के कहे हैं मूल प्रथमानुयोग और गंडिकानुयोग। मूल प्रथमानुयोग में अरिहंतादि के चरित्रों का वर्णन है।

संवत् १२९ के लगभग जयसागरोपाध्याय रचित गुरुपारतन्त्र्य वृत्ति में यह उल्लेख है। क्षमाकल्याणजी कृत पट्टावली में लिखा है कि चित्रकूट के गढ़ के वज्रस्तंभ में स्थित मन्त्राम्नाय की पुस्तक भी इन सूरिजी ने मन्त्रबल से ग्रहण की इसी प्रकार उज्जैनी के महाकाल प्रासाद के स्तंभ से सिद्धसेन दिवाकर की पुस्तक (औषधि प्रयोग से) प्राप्त की

पुण्यवान् के पग पग निधान की कहावतानुसार आपके तपोबल के प्रभाव से और भी बहुत सी विद्याएं उपलब्ध हुईं।

इस घटना का उल्लेख प्रभावकचरित्र के वृद्धवादी प्रबन्ध में सिद्धसेन दिवाकर के सम्बन्ध में इस प्रकार किया है —

एक बार वे चित्तौड़ गये तो उनको एक विचित्र स्तंभ देखने में आया। जो न पत्थर का था न लकड़ी का और न मिट्टी का। उसे बारीकी से देखने पर वह औषधमय प्रतीत हुआ। उसके विरोधी द्रव्यों द्वारा छिद्र कर उन्होंने उस स्तंभ में एक छिद्र किया तो वह पुस्तकों से भरा हुआ मालूम पड़ने लगा। आचार्यश्री ने उसमें से एक पुस्तक निकाल कर उसका १ पत्र पढ़ा फिर उनके हाथ से वह पुस्तक अकस्मात् देवता ने छीन ली फिर भी उन्हें उस पत्र में लिखित स्वर्णसिद्धि योग और सरिसव से सुभट तैयार करने की विधि याद रह गई। जिससे उन्होंने देवपाल राजा की शत्रु का आक्रमण होने समय प्रयोग कर सहायता की थी।

कालिकाचार्य के प्रथमानुयोग ग्रन्थ की चर्चा का उल्लेख करते हुए मुनि श्री कल्याणविजयजी उसे कथानिबन्ध ग्रन्थ बतलाते हैं।

गणधरसार्द्धशतक बृहद्वृत्ति में तो श्रीजिनदत्तसूरिजी को मन्त्र पुस्तक की प्राप्ति उनके विद्यागुरु श्रीहरिसिंहाचार्यजी से हुई थी लिखा है।

इस मन्त्र पुस्तक के सम्बन्ध में गुर्जरेश्वर महाराजा श्रीकुमारपाल के समय का उल्लेख १७ वीं शती की पट्टावलियों में इस प्रकार पाया जाता है :—

एक बार महाराजा कुमारपाल ने विक्रम की भांति अपने सम्वत्सर प्रवर्त्तन की इच्छा से स्वर्णसिद्धि विद्या के विषय में श्रीहेमचन्द्रसूरिजी महाराज से

(२) मामराजादि देवों का भक्त होना—

सिन्धुदेश में आपके उपदेशों से बहुत से नवीन श्रावक बने और बहुत से श्रावकों ने चैत्यवास की अन्धपरम्परा को त्याग कर विधिमार्ग का स्वीकार किया था। एक बार उन श्रावकों ने आपसे वीनति की कि गुरु महाराज! आप जैसे प्रभावक

पुरुष। उन्होंने कहा कि खरतरगच्छ वालों के पास श्रीजिनदत्तसूरिजी की वह पुस्तक है जिसे हरिभद्रसूरिजी के शिष्य बौद्धों से लाये थे उसमें स्वर्णसिद्धि है। कुमारपाल ने इसके लिए खरतरगच्छीय श्रावकों को खुश कर पुस्तक प्राप्त की और उन्होंने बहुत से मनुष्यों की उपस्थिति में वह पुस्तक हेमचन्द्राचार्यजी को देकर खोलने की प्रार्थना की। आचार्यश्रीने उसके ऊपर "इसे न खोलना और न बांचना किन्तु भण्डार में पूजन करना" लिखा हुआ देख कर उसे नहीं खोला। आचार्यश्री की बहिन हेमश्री महत्तरा ने खोलने का आग्रह किया तो उन्होंने कहा कि श्रीजिनदत्तसूरिजी ने इसे खोलना निषेध किया है अतः उनकी आज्ञा का उल्लंघन कैसे किया जाय! महत्तरा ने कहा क्यों क्या होता है? मैं अभी खोलती हूं—यह कह कर खोलने के साथ ही वह अन्धी हो गई अतः पुस्तक सरस्वती भंडार में रख दी गई। रात के समय वहां अग्निप्रकोप हुआ सब पुस्तकें जल गईं। पर श्रीजिनदत्तसूरिजी की देवाधिष्ठित पुस्तक वहां से उड़ कर अदृश्य हो गई। कहा जाता है कि वह पुस्तक अब भी जैसलमेर के किले में श्रीसंभवनाथजी के मन्दिर के नीचे ताड़पत्रीय ज्ञानभंडार में स्तम्भ के अन्दर गुप्तरूप में विद्यमान है।

कल्पतरु के अनुयायी होकर भी हम लोगों की आर्थिक दशा नहीं सुधरना शोभनीय नहीं है। अतः कोई ऐसा उपाय कीजिये जिससे हम लोग सुखी होकर धर्माराधन में विशेष प्रवृत्ति कर सकें। करुणा-समुद्र सूरिजी ने कहा—मकराणा जाकर अमुक वेला में १० अंगुल की प्रतिमा बनवाकर लाना। पर यह ध्यान रखना कि रास्ते में किसी के घर भोजन न करना। उसे शुभवेला में यहां स्थापित की जायगी तो सब ठीक होगा श्रावकों ने वैसा ही किया प्रतिमा लेकर नागौर आए वहां स्थित शांतिसूरिजी ने रात को स्वप्न में प्रतिमा प्रतिष्ठा द्वारा सिन्ध के धनसम्पन्न होने का संकेत पाकर वहां के श्रावकों को कहा कि—प्रतिमा के जाने वाले श्रावकों का विशेष आग्रह से भोजन कराओ। नागौरी श्रावकों ने सिन्धदेश के श्रावकों को भोजन करने के लिए बुलाया तब पीछे से शांतिसूरिजी ने प्रतिमाकी अंजनशलाका कर दी। श्रीजिनदत्तसूरिजी के पास प्रतिमा लेकर पहुंचने पर उन्होंने उसे अंजनशलाका की हुई देख कर कहा अरे! तुम लोगों ने क्या बालकपन किया। तुम्हें भोजन हुआ है प्रतिमा की अंजनशलाका तो मार्ग में हो गई अतः तुम्हारे लक्ष्मी प्राप्ति का मनोरथ असफल हो गया।" उन्होंने

१ लोकभाषा में बालक को छोरा कहते हैं। सूरिजी के इन शब्द से संबोधित करने पर उनके वंशजों का गोत्र छोरिया प्रसिद्ध हुआ जिनके घर अब भी बीकानेर में विद्यमान हैं।

दूसरी बार उपाय बताने का विशेष आग्रह किया। तब सूरिजी ने कहा भटनेर के महावीर प्रासाद में स्थित मणिभद्र प्रतिमा यदि तुम्हें प्राप्त हो तो मनोरथ सिद्ध हो सकता है। ऐसा सुन कर चार श्रावक वहाँ गए और मौका पाकर प्रतिमा ले रवाना हुए। भटनेर वालों के पीछा करने पर उन्होंने प्रतिमा को पंचनदी में विसर्जन कर दी। सूरिजी ने इस घटना को जानकर प्रतिमा विसर्जन के स्थान पर जाकर मणिभद्र का स्मरण किया। उसने प्रसन्न होकर कहा—अब मैं बाहर नहीं निकलूंगा, यहीं पर रहा हुआ सान्निध्य करूंगा। उसने सूरिजी को पूर्व उल्लिखित ७ वर दिये जिनमें पांचवां सिन्धुमण्डल में प्रति ग्राम में १ श्रावक विशेष समृद्धिशाली और अन्यों के सर्वथा निर्धन न होने का वर था।

इसी प्रकार तीन अन्य पीर भी सूरिजी के भक्त थे। उनके देव होने के अनन्तर उन्हें पंचनदी पर निवास करने को कहा गया। इरावर के स्वामी का सेवक सोमराज आपश्री का परम भक्त था। वह लड़ाई में काम आने पर देव हुआ सूरिजी ने उसे भी पंचनदी में रहने का स्थान बतलाया। इस

१ पट्टावलियों में लिखा है कि सुलेमान पर्वत का अधिष्ठाता खोडिया क्षेत्रपाल भी इन पीरों में आ मिला और उसकी भी पूजा इनके साथ होने लगी।

श्रीजिनपद्मसूरिजी एवं अकबर प्रतिबोधक श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने पंचनदी साधन की थी। हमारे समय में पंचनदी साधनविधि की नकल है।

प्रकार पंचनदी में सूरिजी के पाँचों भक्त देव रहने लगे। श्रावक लोगों ने इन्हें नैवेद्यादि से सन्तुष्ट किया। इसी प्रकार ५२ वीर आदि अनेक देव आपश्री के भक्त हो गए।

(३) देरावर के स्वामी का भक्त होना—

एक बार देरावर के स्वामी बड़े निर्धन हो गए तब साधुओं की भक्ति में सूरिजी के पास रहने लगे। आपकी सेवा से गुरु महाराज की कृपा हुई और सब तरह से सम्पन्न होकर देरावर का किला बनाया।

(४) अजमेर में विद्युत् स्थमन—

एक बार सूरिमहाराज अजमेर पधारे। वहाँ सन्ध्या प्रतिक्रमण के समय बिजली गिरी तो आपश्री ने तत्काल स्तंभित कर दी। श्रीमत्क्षमाकल्याणजी की पट्टावली में लिखा है कि सूरिजी ने बिजली को काष्ठ पात्र के नीचे दबा दी और प्रतिक्रमण के अन्दर उस विसर्जित की। उसने (विद्युत् अधिष्ठात्री देवी ने) सूरिजी के समक्ष यह प्रतिज्ञा की कि— आपकी दुहाई देने पर विद्युत पात न होगा।

(५) मुल्तान का हाथी श्रावक—

एक बार सूरिमहाराज मुलतान पधारे। वहाँ कुणिया गोत्रीय हाथी श्रावक आपका परमभक्त था। सूरिजी के धर्म्मादि शब्दों से उसे विशेष सम्मानित करते हुए देखकर दूसरे श्रावकों ने कहा—इस साधारण व्यक्ति को इतना आदर देने का क्या

कारण है ? सूरिजीने कहा—महानुभावो ! हाथी तो राजद्वार में शोभता है, इसका नाम हाथी है अवसर आनेपर इससे बहुत काम निकलने की संभावना है।" उस समय वहां कँवला[1] गच्छीय संघ धनवान एवं बहुसंख्यक था। उन्होंने वहां खरतर गच्छ का प्रसार व उन्नति होते देखकर ईर्ष्यावश वहां के अधिपति नवाब को प्रलोभन देकर खरतरगच्छ वालों को विशेष हानि पहुंचाने के हेतु प्रस्तुत किया। अधिपति ने पूछा कि खरतर कौन और दूसरे कौन यह कैसे जाना जाय ? उन्होंने कहा—कवलागच्छीय लोग तिलक धारण करके आवेंगे तिलक वर्जित खरतर समझें। विश्वस्त सूत्र से हाथीसाह और सूरिजी को इसका पता लगा। हाथीसाह ने बीबी के पास जो उसकी धर्मबहिन थी जाकर सारा वृत्तान्त निवेदन किया और कहा कि हमारा मरण निकट है। बीबीने उसे आश्वासन देते हुए नवाब से कहकर संकट टलवा दिया। अपना पासा उलटा देखकर वे लोग अपना तिलक पोंछ कर हाथी के अनुकरण में खरतर गच्छीय हो गए। गुरुमहाराज ने कृपा करके प्रतिक्रमण में अजितशांति पढ़ने का आदेश हाथीसाह को दिया। इसी प्रकार पट्टावलियों में बोथरों को जयतिहुअण और मेहता के गणधर चोपड़ों को उवसग्गहरं पढ़ने का आदेश दिया लिखा है।

१ तिलकधारी वालों के लिए [illegible] कवला शब्द का प्रयोग हुआ है पर शब्द उपकेशगच्छ वालों के लिए रूढ़ है। [illegible] ने उनको [illegible]" में इन्हें मरुधरीय नाम से संबोधित किया है। 'उपकेशगच्छ चरित्र' आदि से भी उस समय सिंध में इस गच्छका अच्छा प्रभाव मालूम होता है।

(६) पाटण का ईर्ष्यालु अम्बड़

किसी समय मुलतान में सूरिमहाराज का प्रवेशोत्सव बड़े धूमधाम से होता देखकर पाटण से व्यापार के निमित्त आए हुए अन्य गच्छीय अंबड़ ने सूरिजी से कहा—ऐसा प्रवेशोत्सव पाटण में हो तो मैं आपका प्रभाव समझूं। सूरिजी ने कहा—देवगुरु के प्रसाद से वहां भी ऐसा ही होगा पर उस समय तुम मस्तक पर पाटली लिए हुए सन्मुख मिलोगे। धर्मप्रचार करते हुए सूरिजी का पाटण पधारना हुआ। अंबड़ उन्हें उसी अवस्था में मिला वह बड़ा लज्जित हुआ और मन में द्वेष रखता हुआ बाहर से बड़ा भक्त बन गया। एक बार तपस्या के पारणे के दिन अतिथि संविभाग के बहाने सूरिजी के शिष्यों को बीनति कर विषमिश्रित शक्कर का जल बहरा दिया। गुरु महाराज को उसे थोड़ा ग्रहण करते ही वह विषाक्त ज्ञात हुआ। भणसाली आभू नामक भक्त श्रावक को ज्ञात होने पर उसने तत्काल अपनी शीघ्रगामिनी सांढ़ पर पालनपुर से निर्विष मुद्रिका या विषापहारी रसकुंपक मगाकर विष का असर दूर किया। अंबड़ के इस जघन्य कृत्य से उसकी सर्वत्र निन्दा हुई और वह द्वेष धारण करता हुआ कुछ दिन बाद मरकर व्यन्तर हुआ मौका देखकर एक समय रात को गुरु महाराज का सप्रभाव रजोहरण नीचे गिरा दिया और उपद्रव करने लगा इस व्यन्तरोपद्रव को दूर करने के लिये आभू श्रावक के आत्मभाग देना स्वीकार करने पर व्यन्तरोपद्रव दूर हो

गया। गुरु महाराज ने स्वस्थ होकर व्यन्तर को वश में कर लिया जिससे भण्डशाली भामू के कुटुंब की रक्षा हुई।

(७) मुल्लापुत्र का जीवनदान

एक बार शवनगर में सूरिमहाराज का प्रवेशोत्सव बड़े समारोह के साथ हुआ। जनता की असंख्य भीड़ के कारण एक ७ वर्ष का मुल्ला का पुत्र व्याकुल होकर मर गया। म्लेच्छ लोगों ने हल्ला गुल्ला करके शोर मचाना शुरू किया और वे जैनों पर विविध आरोप लगाने लगे। पूज्यश्री ने शासन प्रभावना के लिए मृतक बच्चे के शरीर में व्यन्तर प्रवेश करा के उसे जीवित कर दिया। इससे प्रभावित होकर गुरु महाराज के उपदेशानुसार म्लेच्छ कुटुंबों ने मांसभक्षण का त्याग किया।

(८) ७०० शिष्याओं का गुरुणी

एक बार सूरिमहाराज नारनौल[1] पधारे। वहाँ आमान श्रावक के ४ वर्ष का विवाह के समय शरीरान्त हो गया। लोगों ने कन्या को उसके साथ चिताप्रवेश करने के लिए मजबूर किया।

१ यह पट्टावलियों में नागम और कन्यों में सुपनपुर लिखा है पर उस जमाने में मुगलों का आगमन हो नहीं हुआ था ... हाँ सुपनमानों का किन्तु म प्रवेश ६ वीं शताब्दी में हो चुका था

२ यह पट्टावलियों में नू नाम लिखा है पर सुदर्शन बैनजी की ... के अनुसार ... ११ ... मारवाड़ ... के नाम के ... में जाता था। ... प्राचीन ... ... का गुर्वावली में पाया जाता है।

यह बच्ची हुई पिता की भयंकरता से भयभीत होकर गुरु महाराज के चरणों में आई। सूरिजी ने उसके पिता को समझा कर कन्याको धर्मध्यान में प्रवृत्त किया और वहां स्थित कवला गच्छीय साध्वी को उसे पढ़ाने के लिए सुपुर्द किया। उसके आवश्यक अध्ययन हो जाने पर गुरु महाराज ने दीक्षित कर साध्वी बनाई। एक बार उसके मस्तक में बहुत जूंऐ पड़ी देख कर अन्य साध्वी ने गुरु महाराज से कहा गुरु महाराज ने अपने निमित्तज्ञान से कहा कि इसके मस्तक में जितनी जूंऐ हैं उतनी ही शिष्याएं होंगी। वे जूंऐ निकाल कर गिनती करने पर ७ हुई। आगे चल कर विक्रमपुर में उसके ५० शिष्याएं हुई और गुरु महाराजकी भविष्यवाणी सत्य हुई।

(९) परकाय प्रवेशिनी विद्या—

सूरिमहाराज बड़नगर पधारे वहां के ब्राह्मण जैनों से बड़ा द्वेष रखते थे। एक बार मरणासन्न गाय जैन मन्दिर के अहाते में प्रवेश कर मर गई। ब्राह्मणों ने मौका पा कर जैनों के विरुद्ध आन्दोलन शुरू किया कि—जैनदेव गोघातक है। जनशासन के इस अपवाद को दूर करने के लिए श्रावकों के आग्रह से सूरिजी ने परकायप्रवेशिनी विद्या द्वारा गाय को जीवित कर दिया। वह गाय स्वतः उठ कर शिवालय में शिव की पिण्डी के सम्मुख जा गिरी ब्राह्मण लोग गाय को अपने मन्दिर में मरी हुई देखकर बड़े लज्जित हुए और इस असाधारण कार्य से प्रभावित हो कर विनीत भाव से गुरु महाराज को प्रार्थना

लिखा है कि सूरिजी की कृपा से राठौड़ सीहाजी मारवाड़ में राज्य स्थापना करने में सफल हुए थे। इसी कारण राठौड़ नृपति तब से आज तक खरतरगच्छाचार्यों को अपना गुरु मानकर बहुमान करते आए हैं। 'राठौड़वंशावली' में इसका विशेष वर्णन करते हुए लिखा है कि—

गुरु खरतर प्रोहित सिवड़, रोहड़िया बारहठ
मांगणहारा सेवड़ा राठवड़ां कुलवट्ट। १॥"

इतिहास के अनुसार सीहाजी का समय सूरिजी के समकालीन नहीं है अतः सम्भव है कि स्वर्गवासी गुरुदेव ने देवरूप में उन्हें सहायता की हो। जिस प्रकार बीकानेर नरेश सुजाणसिंहजी को स्वर्गीय दादा श्रीजिनकुशलसूरिजी ने शत्रुओं के संकट से मुक्त कर सहायता की थी उसी प्रकार श्रीजिनदत्तसूरिजी की भक्ति से सिहाजी को सफलता मिली होगी।

इसके अतिरिक्त पट्टावलियों व प्रकाशित चरित्रोंमें भक्त श्रावक की डूबती हुई नौका को तिराना, अम्बरणी कंबल पर बैठ कर पंचनदी पार होना आदि बातों का उल्लेख पाया जाता है।

'युगप्रधानगंडिका' में श्रीजिनदत्तसूरिजी का नाम युगप्रधानों की नामावली में आया है एवं सूरिजी के एकासन व्रतधारी होने का उल्लेख भी कई चरित्रों में आया है। महो० रामलालजी रचित दादासाहब की पूजा और 'महाजन वंश मुक्तावली' में सूरिजी के सम्बन्धित कई अन्य बातों का भी उल्लेख है पर इसके संबंध में हमें अभीतक विशेष अन्वेषण आवश्यक प्रतीत होता है।

परिशिष्ट नं० १

श्री जिनदत्तसूरि प्रतिबोधित गोत्र सूची

आस्तुपममामि परम्परा खरतर गच्छ ना भट्टारक जंगमयुग प्रधान श्रीजिनदत्तसूरि प्रतिबोधित छत्तीस राजकुली महाजन श्रावक खरतर तहना गोत्र लिख

१ श्री राय मणसाली मंत्रि आभू सालि गोत्रबद्ध खरतर सार्दको राजपूत।

पछे मणसाली गोत्रबद्ध खरतर देवड़ा रजपूत।

३ कांकरिया गोत्र खरतर भाटी रजपूत।

४ करमदिया बद्ध गोत्र खरतर आकाश्या आहक खरतर।

५ मणहड़ा गोत्रबद्ध खरतर श्रीपम्ना आहक खरतर ।

६ मणसम्मा दसम री डाहाड़ा शाखा गोत्रबद्ध खरतर माहणा माह थो।

७ डागवड़ दसमरो दिहाड़ा शाखा गोत्रबद्ध खरतर सं १२४५ राठौड़ चोपड़ा धरण साह थो खरतर।

८ लायवा दसमरो दिहाड़ी शाखा खरतर पमार रजपूत।

९ साव सखा बद्ध गोत्र खरतर।

डांगी गोत्र मध्ये कानकोत सबे खरतर।

११ रांका सठिया तथा काला सब खरतर।

१२ सुघड़ा कुडाम गोत्रबद्ध खरतर।

१३ कूकड़ चोपड़ा गोत्रबद्ध खरतर जाति पड़िहार रजपूत मण्डोवरा का राव चूड़ा कहाणा।

१४ गणधर चोपड़ा गोत्र खरतर जाति कायथ हिंसारी गण कहाणा।

१५ पीतलिया गोत्रबद्ध खरतर इसमि नी विहाडी मान ते खर०।

१६ कांकरिया गोत्रबद्ध खरतर।

१७ गुंदवाड़ा मुं इसम नी विहाडी माने त गोत्र खरतर।

१८ बैताला बद्ध गोत्र खरतर।

१९ नाहटा तथा बापणा पहल त सर्व १ विहाडी करे। तेरे १३ साखि ते खरतर।

२० सोनिगरा इसमनी विहाडी भाला खरतर

२१ बाफिणा दोनुं भाइ गोत्रबद्ध खरतर देवड़ा रजपूत राव सामतसी केइ सोनगरा वास।

२२ कुम्भा गोत्र बद्ध खरतर। सावसुखिया अडक खरतर।

२३ बेद चोरड़ वर्द्धमान शाखाबद्ध खरतर सेठिया

२४ संघवालेचा खरतर कोचर संघवी ना केइ ना खरतर गोत्रबद्ध।

२५ मालू गोत्रबद्ध खरतर पमार जाति प्रथम राणा रजपूत चाहमाण १ महलाका अडक फाफलिया।

४७ लुणावत १ माकलीया २ डागलिया ३ बम्म गालणशा ५ पकाही ६ नापण्णा ७ दसमरी सिद्धावा खरतर।

४८ आँगड़ा गोत्र खरतर। लुणकिया गोत्र खरतर।

४९ मगदिया १ पाड़ीवाड़ा बैद ३ डोसी ४ हरड़ा गोत्र खरतर महेसरी।

५० काठोफाड़ा खरतर।

५१ बोरवाड़ पाघाइलिया गोत्र खरतर।

५२ अब सबा गोत्र मांहि इतरा मिळै —

बुरचा १ बम्म २ कनकड ३ गाघडिया ४ गालणशा ५ पारिख ६ भटाकिया ७ माव ८ लुणकिया ९ बोरवेडिया १ सेस्डोव ११ लुणावत इतरा १२ गोत्र

[पत्र १ हमारे संग्रह में]

[श्रीपूज्यों के दफ्तर एवं फुटकर पत्रों व बहियों में इत्यादि विषयक बहुत सी सामग्री मिलती है। नमूने के तौर पर यह एक पत्र दिया गया है स्वतंत्र शोध करने से बहुत से नवीन तथ्य प्रकाश में आ सकते हैं]

पइ पाणइ पग्गयइ जिय गलइ माणिय च महइ ।
दइइ कुसामभीनइ तस्सो गुणादि वन्नइ ॥ १ ॥
सोमो महुरक्खणी भयमुक्का सव्वहावि निक्कसा ।
निच परोवयारी पयभण पग्गुिद्धिचारी य ॥ ११ ॥
मसवि वाइतिमिर पयसरइ जम्मि जिणमायम्मि ।
तत्थट्ठियं पि लद्धिद्धि-वाहग ठवइ न कयावि ॥१२॥
तरम्मि च सूरिभिमय असचमिए तममिव च विप्फुरइ ।
बहु तारय पयासइ मासए विरुत्त मणिमग्गं ॥ १३ ॥
इय जिणदत्त सुगुत्तिमग्गा देसीय जुगप्पहाणाय ।
न मवण परिमाणं महानिसीहाओ भणिय मिणं ॥१४॥

२ पदव्यवस्था

(जिनदत्तसूरिभणित जिनपालोपाध्याय लिखित)

अथ ॥ श्रीयुगप्रधानाचार्यस्य गच्छाधिपतेः पत्तनादौ वाद्यनादिना प्रवेश क्रियते। निछावर्णं च क्रियते। मङ्गलकलशा सम्मुखं आगच्छति। दीपिकापञ्चकोत्तारणं च क्रियते। व्याख्याने कृते सति श्राविका गीत गायन्ति। इति संक्षेपेण श्रीयुगप्रधाना चार्यस्य प्रतिपत्तिविधिः ॥छ।

द्वितीयस्थानीय व्या सामान्याचार्यस्य नगर प्रवेशे चतुर्विध संघः सम्मुख आगच्छति। संखो वाद्यते। श्राविकाश्च गीतं गायन्ति। वादित्र न वाद्यते। छत्रं सम्मुखं नागच्छति मङ्गलकलशाः सम्मुखो ना गच्छति। निछावरं च न क्रियते। प्रविशमानाया स्वर्णमं

सुगुरु गुण संथव सत्तरिया

(गणधर सप्ततिका*)

गुण मणि रोहण गिरिणो रिसहजिणिंदस्स पढम मुणि वइणो
सिरिउसभसेण गणहारिणोऽणहे पणिवयामि पए ॥ १ ॥

अजियाइ जिणवराण भवियाणऽणाण पणय पाणीण
पणमामो दीण मणोह गणहारीण गुरुगणोहे ॥ २ ॥

सिरि वद्धमाण वरनाण चरण दंसण मणीण वण निहिणो
तिहुयण पहुणो पडिहयभिव नवमो समणो सीसो ॥ ३ ॥

---

* यह कृति जैसलमेर के बृहद् ज्ञानभंडारस्थ ताड़ पत्रीय प्रति से श्री हरिसागरसूरिजी द्वारा की हुई नकल के आधार से प्रकाशित की जाती है। इसकी एक अन्य प्रति थाहरूसाह के भंडार (जैसलमेर) में भी प्राप्त हुई थी जो कागज पर त्रिपाठाकार में बारह ताल के लिए लिखी हुई थी। उपर्युक्त ताड़पत्रीय प्रति से इस प्रति का पाठ बहुत भिन्नता रखता है, कहीं कहीं तो गाथाएं भी अलग भिन्न हैं गाथाओं का क्रम भी अस्तव्यस्त है इसलिए हम प्राचीन ताड़पत्रीय प्रति को ही प्रामाणिक समझकर शुद्ध उसीके पाठ को प्रकाशित करते हैं।

अन्नाण नीर पउरे सन्ना सगार सायरे पडिया ।
करुणाए जेहिं ठविया जिण पवयण जाणवत्तंमि ॥४४॥
पासिम्मसीलमाणं सगहिय समग्ग समय साराणं ।
पउरगुण सप पमरण देसणेण सयण्ण जीवाणं ॥४५॥
जिणसमय सवणाणं सुहाभिकिरिया पयडिया जेहिं ।
तेणमहंतेसि नमो हरिभद्द मुणीसराणंपि ॥४६॥
आयार वियारणयस्स चंदिमा निहय मोह तिमिर भरे ।
सीलंको कुमय नागगणंमि हरिणंक सन्निभो ॥४७॥
स तिहुयण पयपय-कमल कुवलयमुक्ख मचारि विहियमयं ।
जीवाणममयराणंमि पवरं निवद्धं वंदे ॥४८॥
सुपसन्न वीर जिण तित्थ समणो भव्व जण मणोहरणो ।
सिरि वद्धमाणसूरी जोग पसंसोतयं वंदे ॥४९॥
पुरओ दुल्लह महिवल्लहस्स अणहिल्लवाडयपुरंमि ।
सुविहिय विहार पक्खो पयडीओ जमय सुरीए ॥५० ॥
अपडिबद्ध विहारेण विहरिया जे पगह पडिवक्खा ।
ताणं जिणेसर सूरीण परम पणिवयामि पए ॥५१॥
सिरि सूरि जिणेसर पयण पउम महुयरव्व जे जीवा ।
नाण गुण जडिय निवडय आसायइ समय मयरंदा ॥५२॥
सिरि वीर जिणेसर समय रयण कोसोवयव्व रयणाई ।
पुव्वरिसिमियइ कयाइणो पयन्न पुन्नाइ ॥ ५३ ॥

बाहाभ्यंतर दुक्करतवा विहाणुजयाय जिमधम्मिय ।
समयाणुसारि किरिया पयट्ठिनिरवानमोतेसिं ॥६४॥
भव पासं करय मरुहिं च विसोहिऊण अपमाए ।
निच्च सत्ति पयडंता विहरंति सया नमो तेसिं ॥६५॥
इय जे पच पयार आयार आयरंति आयरिया ।
उवज्झायाविय जे केइ साहुणो तेसि पणमामि ॥६६॥
पुण्णाइ जीव नवमेव आमए देसएसतत्ताणं ।
नवमेव पासणाए कारएस समयाणु वित्तीए । ६७॥
आउट्टि इण्ण कप्पण्णमाण परिमाणए विमाणाए ।
अमयम मासणे तई समुरयए चरण करणेसु ॥६८॥
पुव्वायरेण मुणिउ अवयम विरोहि समय सुत्ताई ।
दव्वाईण भणिया पवत्ता निरवेक्ख सावेक्खा ॥६९॥
पवमरतनाउ कुणं जे देसणं महासत्ता ।
मग्ग पवन्ना मग्गमिच्छाच्चायाइ पाणीणं ॥७ ॥
जे दुसम दुम्मयणं खोउप्पन्नमासन मि ठावेंति ।
पर संभविमाविन व परण (ण्ड) समि वद्दंति ॥७१॥
बह कहवि पमाए वसा सम्मं नयमेव मो पयइ ति ।
तदविहु जिणमयमिय मइरियं जेसकरेंति ॥७२॥
उप्पण्ण परमबहुणाहि जेहि मइ कम्मनसमो सरे ।
वहिरय पवयउकखा दढ चउरंग सममम ॥७३॥

सप्रभाव स्तोत्र

मम हरउ जर मम हरउ विसहर नमर जामर हरउ ।
चोयरि मारि वाही हरउ मम पास जिण वरो ॥१॥
पगतर निवसर वेल जर तइय सीय उण्ह जर ।
सुभ जर चउत्थ जर हरउ मम पासजिणवरो ॥२॥
जिनदत्ताणा पालण परस्स संघस्स विहि समग्गस्स ।
आरोग्ग सोहग्ग अपवग्ग कुणउ पास जिणो ॥३॥

(इति श्री जिनदत्तसूरि युग प्रधान कृतम्
सप्रभाव स्तोत्रम्)

विधिका के प्राप्त श्लोकत्रय

हर्षोऽस्य मरुदेवाख्य सरेः श्री भुवनाद्रम् ।
समवाप्य क्षो मत्वा चैत्यगतोऽस्ति पापकृत् ॥१॥
श्री मल्लपुरीय श्री मरिजिनप्रवरस्य बिम्बेन ।
जिनवल्लभेन गणिना चैत्य निवासः परित्यक्तः ॥२॥
इत्यादि गतमङ्केन देव भद्रेन सूरिणा ।
श्री चित्रकूट दुर्गेऽस्मिन् सोऽपि सूरिपदे कृतः ॥३॥
(गणधर सार्द्धशतक (गा ८४ की) वृहद् वृत्ति स)

शान्ति पर्व विधि का अन्तिम श्लोक

देवादिदेव पूजाविधि इमो मणिमयगुम्फादधर ।
उदरिपति श्री जिनदत्तसूरिभि युगप्रधान गुरोः ॥
मंत्रा प्रं० २६६

परिशिष्ट नं० ३

(१) श्री जिनदत्तसूरि छप्पय

जो अममाणु गिरि वद्धमाणु मण माण विवज्जिउ
सिद्धि पुरंधिनि वरमाणु मण पंजर मज्जिउ ।
जोगाजोग पयासणिक मुव भुवण दिवायरु ।
जो जिणिंदु नव अमर विंदु वंदिवि करुणायरु ।
चउभरि धीर जुगवर गुरु गुरुभायर उठविय मण ।
जिणदत्त सयलगण तरणि जिण पइ गमण महाधम्मणु ॥ १ ॥
अमल कमल दल नयण सरय पुन्निम ससि निम्मल ।
वहइ करग्गइ पुरउ जासु तवसिय सिवुज्जल ।
उम्मिलति दक्खकलीए परि अमिय झरिर ।
भगु मयण अरि ठम समूह मयरय कल सिर ।
तिमिरम्मि देवि जुग रयण निरिंगायणरि सगुविय ।
महुकम्म ससि उच्चाच्छ गुरु गुण उठयणि अहविय ॥ २ ॥
रयउ पेक्खइ सगुण विगुण पेक्खइ सु विरत्तउ ।
जो न गुरु धम्मरिय नमइ कुमइ मय मत्तउ ।
सगुण दोस दोस गुण मुद्द मौहम्मसु पेक्खइ ।
पमइ म मउ संसार समउ सो परयण कक्खइ ।

गुण वण्णिउ गुणि वूलम पढम जीव पयारह परियउ ।
सो नरय नयर पइ गमण भाइ भमइ करयउ चप्पिउ ॥ ३ ॥
सो वण्णिउ जुग रत्त पुरु पच्छइ निय वुद्धिहिँ ।
मग्ग मारि गुण दाम मग्गि बुज्झइ मुणिसुद्धिहिँ ।
हेउ जुत्ति निउत्ति जुत्ति सुगरिक्खिवि पागइ ।
कमउ पाम कपमार समन गुणि जिम्मतु वायइ ।
जिम वण्णिउ भवभय मीर मण दोस छड्डि मुणि सग्गई ।
उस्सग्ग उववायतरिछियइ बहु जिणगिरि वर सम्मग ॥ ४ ॥
दीसहि सूरि बहुत्ति मुणिहि माहप्पु समीसहि ।
पर लक्खण समत्थमि सामत्थ न दीसइ ।
समई विचप्पि जिणमय भप्पु उस्सुत्त पभावहि ।
पाइहि न पय मग्गम्मि मुद्ध जुगवर पभावहि ।
वम किवि निमित्त जिगउ तवहि जि ईसर हुयउ ।
ते अणिहि सूरि वी पउपई भणिउ कयावि न चडउ ॥ ५ ॥
केवि जणहि रयणिहि पढइ मग्गतु पमायण ।
किवि जिन बिंब पवइ भणहि सावय नइ भागु ।
केवि उस्सग्ग पडिम मूल गुणेण वदावहि ।
बहु आयरण पयारि परिय चेइय वसावहि ।
पूरगहि मुद्दहि मुणिहि भणि कुपयवरसु पमावहि ।
ते नरहे मूल गयम्मि ठिय जिम वसाणि तिम मारवहि ॥ ६ ॥

भवियहु पेच्छहु दुसह मोह माहप्पु फुरंतउ ।
दसमच्छेरय बलिण लोउ ठगिउम्म नियंतउ ।
ज भणंति जिण आण हीण गुरु अविहि परूवग ।
त नमंति पडिक्कमणति विसरति न मूयग ।
अन्नाण तिमिर छाइय नयण तत्त अतत्त मयंति नवि ।
ते कोसिउम्म गुणि गुरु तरणि गुण भर ठवि पोतमणि ॥ ७ ॥
जे भणंति जिन धम्म हुंति जे तिम्मि मुणीसर ।
जुगपहाण सिद्धंति दिट्ठ गुण रयण मणीसर ।
त उस्सुत्तु भणंति मूढ परलोय न बीहहि ।
ज थप्पिउ सिरि मत निसीहि पर मन करि धीर हि ।
तित्थयर सरिसु जिन होइ गुरु जुगपहाणु न बुज्झउ ।
गुण मणि समुद्द जिणवा निरुउ पुण्ण पुण्णु भव भमउ ॥ ८ ॥
सयल सत्थ परमत्थ मुणन महिमन वाएसरि ।
जिणमय मत महोहि कुम्भ कुम्भग करि केसरि ।
सम्म नाण चरित्त रयण निहि धीरिमहिरि ।
अममु अकिंचणु अचलु अमइ सठियउ सु गुरु गिरि ।
इय गुणहि कलिउ जुगपवर गुरु संपइ हुयउ न हस्सुयर ।
जिणदत्त सूरि सुर किन्नरेहि नमिय दुहनउ सुयउ पर ॥ ९ ॥
जो नर गुरु सिरि जुगमाण भरइ मोक्ख मणि ।
पावइ मन मय वछियत्थ पूरण चिंतामणि ॥

माणिभद्र' वदनवरइ वसि जाव सुवरण ऊबरइ ।
जो 'जिनदत्त' पटइ धरइ साबेवी पवनती मुगुरइ ॥९॥भा ॥
जि सहस गुणीवर सूरि परइ सूरि मन्त्र पवित्र निरन्तरइ ।
जि सहस साधु विमाग करइ तिम श्रावक छतेसमरण सरइ ॥१० ॥भा
खरतर वचि सदा जिमती सीधइ न गुणवी सामती ।
मात माहि वर वरहि मती वेमासिक करिवा लगती सुणी ॥११॥भा
आतम सगतिनुसारि सदा एकासन साधु करइ प्रमदा ।
माणिभद्र' वरसाददुरा मुनिमगछिर प्रणमइ सुगुरुपदा ॥१२॥भा ॥
'चउसठि जोगिणि' बीहिकरी बल 'बावन वीरे' आणवरी ।
सूरि मंत्र विधि ध्यान धरी वरविंद सुनाम्नउ तपति खरी ॥१३॥भा
एक लाख श्रावक भावी पडिबोहीए गुरु लब्धवी ।
सुरनर असुर सवे मावी बहु सेव करइ गुरु गुणगामी ॥१४॥भ ॥
अजमेर उज्जैनी' नइ दिल्ली' भरूअच्छ' जोगिनी विधिसिद्धी ।
अपर अनेक असुर सिद्धी जिणि कीरति त्रिभुवन मइ सिद्धी ॥१५॥भा
सवत बार इग्यार' समइ आसाढ इग्यारसि' शुद्ध समइ ।
'अजयमेर' पुरि समरसमइ श्रीगुणधर सुरधर ठाणि रमइ ॥१६॥भा ॥
गुणधर जिनदत्त सूरि गुणा जे ध्यावइ भइ निधि भविकजणा ।
पभणित बहु कर जया गणि 'सूरचन्द' हित लहह हिया ॥१७॥भा

इति श्री जिनदत्तसूरि गुरुराज गीतम् ।

(पत्र १ हमारे संग्रह में)

उपाध्याय कुशलधीर कृत

(४) जिनदत्तसूरि रास

सुगुरु श्रीजिनदत्तसूरि करउ दिनकर जेम जागतउ जाउ उदयउ ।
निर्मल श्रावक हियइ मंदिर धरउ जगगान गुरुशी शुभम ज्याउ ॥१॥
हद हम्मी मंदिरम नंद करइ तर ठमइ दिन दिन अधिक तरउ ।
घन वारिस दुर्लभ चंद करउ थिर मन करि गुरुराय ध्यान धरउ ॥२॥
पनि केसर अद घनसार घना कि पूजे गुरुराय अधिक मना ।
गुरु गान्धिक वरि सुर असुर गना ते पद्धि पूरइ तासु मना ॥३॥
कर जर कर करी मात समइ मन सुभ जे श्रीजिनदत्तसूरि समइ
महायानि दानि पुन पोमि बमइ सुगरह तनु बडलइ दिन सुन मइ ॥४
आगाही बाइ देवी देवा बनि मनवांछित सुख नम सेवा ।
भारनि दौर अमृत मना सुपइ मन धीमइ गुद मना ॥५॥
ज्याइ रवि रम्माणम सुर्गति बनि मधुर भंगि दवीस बनी ।
चतुसीमी आइ मिलइ सुमती जिण सुभमन्न श्री जिनदत्त बनी ॥६॥
भमइ धरि अक्षर लिखि लखी पद सुगमचान कीरति बाधी ।
वर्तमान गुरु मनवइ मानवी तप वारसि पाय नदी ताबी ॥७॥
जिम बनि कीधा जोगिन्द्र वदा उभि जोगिनी कीधा वचन उदा ।
यतिवाग्निक मेले बच बीर गहा बनि कीधा बावन वीर बहा ॥८॥

दिन एकणि पनरह सइ दीक्खा सिस्स थाप्या सुपरइ वे सिक्खा ।
साहुणीयइ सहस इक एम सही दीसी श्री सद्गुरु दिन दिपसी ॥९॥
प्रतिबोध्या सब सावय साखी जगि जीव दया प्रभ भाखी ।
वडनगरइ श्री सद्गुरु आवी वर ब्राह्मण सबइ धेनु जीवावी ॥ ॥
उज्ज नगरइ श्री सद्गुरु आया पइसारइ पाडम्बर आया ।
लोके भाखी गुरु करडामा युगवर हे लक्खिम दीपावा ॥११॥
गुरु विक्रमपुर पाटइ मगन्य वलि कीधा सुर मानिय विघ्न ।
गोगा मोगा जिण्यी जोगा थाप्या सहु जे वरता कजगा ॥१२॥
डाइणि साइणि मद गत कीधा, गुरु समरणि रोग अलइ कीधा ।
वावइ पुहवी बहु विष पीडा कठिमइ सुर पेम करो क्रीडा ॥१३॥
खिमती पासम सुपर राखी किरिया करतां श्री सब साखी ।
युगवर भगवान मह्ये केता, कहुँ इक रसना करिसु केता ॥१४॥
माणिक मन्त्री कुखि अवतरिया धन वाहडदे जिणि उर धरिया ।
संवत इग्यारह बत्तीसइ बहु अम्मा जनमी प्रम दीसइ ॥१५॥
अनु वर इकतालइ मत लीयउ गुणहत्तरइ गुरु निजपद दीयउ ।
संवत बारहसइ इग्यारह अजमेरइ गुरु सुरपद धारइ ॥१६॥
जगउ युगवर जिणदत्त गुरुराया नरपति सुरपति नत नित पाया ।
गुरु धणवि भगति मरि गुन गाया श्री कुशलधीर इम उवझाया ॥१७

॥ इति श्री जिनदत्तसूरि रास सम्पूर्णम् ॥

संवत् दाने मछरे पे मगव्या उछरंग हो ।
युगप्रधान जग तूं थयो माने अम्बिका देव हो ॥ दो० ॥८॥
थांभो पत्र विरारिने, पोथी परगट कीच हो ।
विद्या सोवन भखरे उजवी माहे जीप हो ॥ दो० ॥९॥
इम विरुद घणा छे ताहरा कहतां नावे पार हो ।
म्हाग संयोगे हादो मटियो अडबडीयाँ आधार हो ॥ दो ॥१० ॥
हूं तू सेवक ताहरो मे आपो धन भ्रस हो ।
भुवनकीरति गुरुराउके ममतद्दे सुख कीव हो ॥ दो ॥११॥

॥ इति श्री जिनदत्तसूरि गीतम् ॥

विशेष नाम सूची ।